प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग पावन सत्संगप्रवचन

समता साम्राज्य

निवेदन

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।।

'बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है - इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।'

(भगवद् गीताः 7.12)

ऐसे संतों के अनुभव-सम्पन्न हृदय से पूरे जीवन, पूरे सुख, पूरी शांति और पूरी अमरता का सन्देश बरसता है। उन ज्ञानवानों की वाणी सत्य स्वरूप ईश्वर को छूकर सत्संग बन जाती है। वह मानव मात्र के लिए महा मूल्यवान खजाना है। उनके अनुभव सम्पन्न वचनों को शांत और शुद्ध भाव से पढ़कर मनन करने वाले महान् पुरुष बन जाएँ और अपने दैनिक व्यवहार में सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता के सिर पर पैर रखकर अमरता के अनुभव में, समता के सिंहासन पर विराजें... इसी भावना से प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-अमृत को केसेटों से ज्यों का त्यों इस पुस्तक में लिपिबद्ध किया गया है।

कृपया साधक-वृन्द बार-बार इस आत्मानुभव-सम्पन्न सत्संग को पढ़ें। अपने मित्रों को, स्नेहियों को यह सुन्दर सौगात देने की कृपा करें।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
अमदावाद आश्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

निवेदन.......... 2
समता साम्राज्य.......... 3
आपके पास कल्पवृक्ष है.......... 35
राग-द्वेष की निवृत्तिरूप अभ्यासयोग.......... 52
ब्रह्माकार वृत्ति बनाओः पार हो जाओ.......... 68
महर्षि ऋभु और निदाघ.......... 78
प्रसंग-चतुष्टय.......... 86
भगवन्नाम की महिमा.......... 86
बलि के पूर्व जन्म की कथा.......... 93
बुद्ध और विश्वसुन्दरी.......... 96
गाँधी जी की सहनशक्ति.......... 97
योगिनी कर्मावती.......... 99

समता साम्राज्य

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद् भक्तः स मे प्रियः।।

'जो पुरुष आकांक्षा से रहित, बाहर-भीतर से शुद्ध, चतुर, पक्षपात से रहित और दुःखों से छूटा हुआ है-वह सब आरम्भों का त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है।'

(भगवद् गीताः 12.16)

अनपेक्षः जिसे तुच्छ विकारों की अपेक्षा नहीं।

शुचिः बाहर-भीतर से शुद्ध।

दक्षः चतुर, कार्य में कुशल।

उदासीनः उत्+आसीनः। ऊपर ब्रह्म में बैठा हुआ पुरुष, तटस्थ।

छोटी-छोटी आवश्यकताओं की तरफ बेपरवाह रहकर अपनी मानसिक शक्ति का विकास करने के लिए कहा गया कि उदासीन रहो। उदासीन का मतलब यह नहीं कि मूर्ख बन जाओ, पलायनवादी बन जाओ। घर में झगड़ा हो गया तो हो गये पलायन। कहीं कुछ अनुचित होता दिखा तो मुँह फेर लियाः 'हमें क्या ? चलो, जाने दो... कौन झंझट में पड़े... जो करेगा सो भरेगा।' धार्मिक जगत में उदासीन का ऐसा विकृत अर्थ लगाया जाता है।

जो व्यक्ति व्यवहार में कुशल नहीं है वह परमार्थ में भी कुशल नहीं हो सकता। व्यवहार में कुशलता क्या है ? छोटी-छोटी अनुकूलता-प्रतिकूलता से प्रभावित न होना, छोटे-छोटे मान-अपमान से आक्रान्त न होना यह व्यवहार की कुशलता है। छोटी-छोटी चीजों से प्रभावित न होना यह व्यवहार की कुशलता है। छोटी-छोटी चीजों से प्रभावित हो जाने से अपनी शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। अतः सावधान रहो। **अनपेक्षः।** तुच्छ मान और अपमान की परवाह मत करो। तुच्छ विषयविकारों की अपेक्षा मत करो। प्रारब्ध में जो होगा वह झख मारके, चक्कर खाकर तुम्हारे चरणों में आ गिरेगा।

हो तो भगवान के भक्त और टुकड़ों की चिन्ता करते हो ? हो तो भगवान के भक्त और चीथड़ों की चिन्ता करते हो ? हो तो प्रभु के प्यारे और खुशामद की अपेक्षा करते हो ? दूर हटा दो इन अपेक्षाओं को। **अनपेक्ष शुचिर्दक्षः।** अपेक्षा रहित हो जाओ शुद्ध हो जाओ।

भक्त बाहर से और भीतर से शुद्ध होना चाहिए। एक बाह्य शुद्धि होती है दूसरी भीतरी शुद्धि होती है। नहाना-धोना, मिट्टी-साबुन आदि से शरीर को स्वच्छ रखना यह बाह्य शुद्धि है। मन से दिव्य विचार करना, किसी का बुरा न सोचना, किसी की निन्दा न करना, किसी की माँ-बहन-बेटी पर बुरी नजर न करना यह भीतरी शुद्धि है।

महापुरुष कहते हैं कि डेढ़ पुण्य होता है और डेढ़ पाप होता है। डेढ़ पुण्य कैसे ? बाहर के शिष्टाचार-सदाचार से रहना, शरीर को साफ-सुथरा रखना, अपने कुल-मर्यादा के अनुसार धर्म का

पालन करना यह आधा पुण्य है। भगवान को अपना मानना और अपने को भगवान का मानकर, उसे पाने का यत्न करना यह पूरा पुण्य है।

डेढ़ पाप कैसे ? मन से किसी का बुरा सोचना, वाणी से गलत शब्द बोलना, किसी का अहित सोचकर बोलना यह वाणी का पाप है। हिंसा आदि करना यह शरीर का पाप है। मन, वाणी और शरीर के सब पाप मिलकर आधा पाप होता है। ईश्वर को अपना न मानना, उसको पाने का यत्न न करना यह पूरा पाप है।

कटुवाणी बोलना, दूसरों को चुभे ऐसा बोलना यह वाणी का पाप है। व्यर्थ बोलना यह वाणी का क्षय है। ईश्वर से दूर ले जाने वाली बातें बोलना यह वाणी का पाप है। ईश्वर के करीब ले जाने वाली बातें बोलना यह वाणी का पुण्य है। ईश्वर के करीब ले जाने वाले दृश्य देखना यह आँखों का पुण्य है। ईश्वर के करीब ले जाने वाले शब्द सुनना यह कानों का पुण्य है। ईश्वर के करीब ले जाने वाली यात्रा करना यह पैरों का पुण्य है। ईश्वर को अपने आप में खोज लेना यह आन्तर हृदय का पुण्य है।

तुच्छ अपेक्षाओं से ऊपर उठो। तुम भारतवासी हो, मनुष्य जन्म पाया है, श्रद्धा है, बुद्धि है, फिर क्यों चिन्ता करते हो ? मारो छलांग.....! जो होगा वह देखा जाएगा। छोटी-छोटी अपेक्षाओं को कुचल डालो। अन्यथा, ये अपेक्षाएँ तुम्हारा समय, तुम्हारी निगाहों की शक्ति, तुम्हारे कानों की शक्ति, तुम्हारी वाणी की शक्ति, तुम्हारे मनन की शक्ति छीन लेगी। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

अनपेक्षः शुचिर्दक्षः।

सनातन धर्म ने शुद्धि पर खूब ध्यान दिया है। जिसके दाँत मैले हैं, कपड़े मैले-कुचैले-गन्दे हैं, जो सूर्योदय के समय तक सोता रहता है वह साक्षात् चक्रपाणि हो, भगवान विष्णु हो तो भी लक्ष्मी जी उसका त्याग कर जायेगी। शांति उसका त्याग कर देगी। कोई सोचे कि 'हम तो भगत हैं.... मुँह धोया न धोया, चलेगा... कपड़े ऐसे-वैसे पहन लिये, चलेगा....' तो यह कोई भक्त का चिन्ह नहीं है। भक्त का मतलब बुद्धू ? भक्त का मतलब पलायनवादी ? भक्त का मतलब आलसी ? भक्त का मतलब प्रमादी ? भक्त का मतलब पराधीन ? नहीं हो सकता है। भक्त का मतलब अगर ऐसा है तो हमें ऐसी भक्ति की कोई जरूरत नहीं है। कबीर जी कहते हैं-

भगत जगत को ठगत है भगत को ठगे न कोई।
एक बार जो भगत ठगे अखण्ड यज्ञफल होई।।

भक्त का मतलब हैः जो अपने चैतन्यस्वरूप अन्तर्यामी परमात्मा से विभक्त न हो। संसारी लोग नश्वर संसार में जितना भरोसा करते हैं उससे अनन्त गुना भरोसा उसे परमात्मा में होता है। वह सच्चा भक्त है।

विश्वासो फलदायकः।

एक होती है शिक्षा, दूसरी होती है दीक्षा। शिक्षा ऐहिक वस्तुओं का ज्ञान देती है। स्कूल-कॉलेजों में हम लोग जो पाते हैं वह है शिक्षा। शिक्षा की आवश्यकता है शरीर का पालन-पोषण करने के लिए, गृहस्थ व्यवहार चलाने के लिए। यह शिक्षा अगर दीक्षा से रहित होती हैं तो वह विनाशक भी हो सकती है। शिक्षित आदमी समाज को जितना हानि पहुँचाता है उतना अशिक्षित आदमी नहीं पहुँचाता। शिक्षित आदमी जितना धोखा कर सकता है उतना अशिक्षित आदमी नहीं करता। विश्व में शिक्षित आदमी जितना उपद्रव पैदा कर चुके हैं उतना अशिक्षित आदमी ने नहीं किया। साथ ही साथ, शिक्षित आदमी अगर सेवा करना चाहे तो अशिक्षित आदमी की अपेक्षा ज्यादा कर सकता है।

शिक्षित आदमी के जीवन में अगर दीक्षा नहीं है तो वह शिक्षा के बल से अपने अहंकार का पोषण करेगा, शिक्षा के बल से दूसरों का शोषण करेगा। 'इस्लाम खतरे में है... धर्म खतरे में है... राष्ट्र खतरे में है....' ऐसा करके अपनी पद-प्रतिष्ठा मजबूत करेगा। दीक्षा के बिना की शिक्षा का पूरा लक्ष्य होगा व्यक्तित्व का श्रृंगार, भोगों का संग्रह। इसके लिए चाहे झूठ बोलना पड़े चाहे कपट करना पड़े, नीति का द्रोह करना पड़े चाहे धर्म का विद्रोह करना पड़े, दीक्षारहित शिक्षित आदमी यह सब करेगा। देख लो रावण का जीवन, कंस का जीवन। उनके जीवन में शिक्षा तो है लेकिन आत्मज्ञानी गुरुओं की दीक्षा नहीं है। अब देखो, रामजी का जीवन, श्रीकृष्ण का जीवन। शिक्षा से पहले उन्हें दीक्षा मिली है। ब्रह्मवेत्ता सदगुरु से दीक्षित होने के बाद उनकी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ है। दीक्षा संयुक्त शिक्षा से अपना भी कल्याण किया और विश्व का भी कल्याण किया। जनक के जीवन में शिक्षा और दीक्षा, दोनों है तो सुन्दर राज्य किया है।

आध्यात्मिकता कोई दरिद्रता का चिन्ह नहीं है। व्यक्ति आध्यात्मिक होता है तो प्रकृति उसके अनुकूल हो जाती है। वह जमाना था कि लोग सोने के बर्तनों में भोजन करते थे। जितना-जितना आध्यात्मिक बल बढ़ता है उतनी-उतन भौतिक वस्तुएँ खिंचकर आती ही हैं। अगर कोई ज्ञानी विरक्ति के प्रारब्धवाला हो, शुकदेव जी जैसा, तो उसे भौतिक चीजों की परवाह नहीं रहती।

व्यक्ति वास्तव में अगर आध्यात्मिक है तो वह लातमाह हो जाता है, अनपेक्ष हो जाता है। जो व्यक्ति अपेक्षाओं से भरा है, आध्यात्मिकता का जामा पहन लिया है, पलायनवादी है वह सच्चा भक्त नहीं हो सकता। चिलम पीने वाले, सुलफा फूँकने वाले, गंजेड़ी, भंगेड़ी सच्चे भक्त नहीं हो सकते। भक्त तो अनपेक्ष होता है, भीतर-बाहर से शुद्ध होता है। गाँजा, अफीम, तम्बाकू आदि अशुद्धि बढ़ानेवाली चीजें हैं। एक माला जाप जपने से तन-मन में जो सात्त्विकता पैदा होती है वह एक बीड़ी पीने से नष्ट हो जाती है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि एक बीड़ी पीने से छः मिनट आयुष्य नष्ट हो जाता है। भक्त के जीवन में ऐसे किसी मादक द्रव्यों की आवश्यकता नहीं रहती। वह अनपेक्ष होता है। वह जानता है संसार के क्षणिक सुख और दुःख, मान और अपमान, प्रशंसा और निन्दा आदि के भाव

और अभाव की इच्छा रखने की आवश्यकता नहीं है। संसार की 'तू-तू.... मैं-मैं' में उलझने की आवश्यकता नहीं है। सृष्टिकर्त्ता के सर्जन में सब बना बनाया आयोजन है। हमारे द्वारा जो काम करवाना होगा वह करवाके रहेगा, धन-मान, पद-प्रतिष्ठा आदि जो देना होगा वह देगा ही। अपेक्षा करके हम अपनी इज्जत क्यों खराब करें ?

सोचा मैं न कहीं जाऊँगा यहीं बैठकर अब खाऊँगा।
जिसको गरज होगी आयगा सृष्टिकर्त्ता खुद लायेगा।।

अगर हमारा प्रारब्ध होगा तो सृष्टिकर्त्ता खुद आने को तैयार है। तू अमृतपुत्र है। तू परमात्मा की संतान है और किस उलझन में उलझा है भैया ? फेंक ये मैले-कुचैले इच्छा वासना के चीथड़ों को। ठोकर मार इन कंकड़-पत्थरों को। तू हीरे-जवाहरात से खेलने को आया है। फूटी कौड़ियों में जिन्दगी गँवा रहा है ! छोड़ इन तुच्छ चीजों की इच्छाओं को। इच्छा छोड़ते ही तेरे अन्दर संगीत गूँजते लगेगा। तेरे भीतर से रस छलकने लगेगा। संसार का गुलाम समझता है कि बाहर से सुख आता है। सुख बाहर से कभी नहीं आता। सुख हृदय से छलकता है। चाहे देखकर, सुनकर, छूकर, सूँघकर, चखकर सुख लो लेकिन सुख की अनुभूति हृदय में होती है।

अज्ञानी लोग बोलते हैं कि भगवान फलानी जगह में हैं किन्तु जानकारों का अनुभव है कि-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृदयेशेऽर्जुन तिष्ठति...

ईश्वर तो सर्वत्र है। उसको पाने की इच्छा रखने वाला दुर्लभ है। ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग दिखानेवाले महापुरुषों का मिलना दुर्लभ है। ईश्वर दुर्लभ नहीं है। वह तो सर्वत्र है, सदा है। ईश्वर सुलभ है।

तस्याहं सुलभः पार्थ...।

'मैं तो सुलभ हूँ लेकिन मेरा साक्षात्कार कराने वाले महात्मा दुर्लभ हैं।'

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।।

"बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है - इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।'

(भगवद् गीताः 7.19)

ऐसे दुर्लभ महात्माओं के देश में, भारत देश में तुम्हारा जन्म हुआ है। कुल की परंपरा से तुमको श्रद्धा का शृंगार मिला है। तुम्हारा कोई न कोई सत्कर्म उस प्रभु को जच गया है इसीलिए तुमको सत्संग मिला है। फिर भी निराश क्यों हो रहे हो ? कब तक बैठे रहोगे ? कमर कसो। केवल गलत विचारों को हटा दो, सही तत्त्व अपने आप प्रकट हो जाएगा। जमीन से मिट्टी-कंकड़-पत्थरों को हटा दो, पानी अपने आप फूट निकलेगा।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष बढ़ानेवाले विचार करने से, ऐसे विचारों से प्रेरित होकर प्रवृत्ति करने से हमारी शक्ति क्षीण हो जाती है। आपमें ईश्वर का असीम बल छुपा है। छोटी-छोटी आकांक्षाओं से, छोटी-छोटी अपेक्षाओं से आप अपनी शक्ति नाश किये जा रहे हो।

एक मुनीम ने सेठ से कहाः "मेरी तनख्वाह 800 रूपये है। बढ़ाकर 1500 कर दो।"

सेठ ने कहाः "तू चला जा। हम 1500 नहीं करते।"

"चला तो जाऊँगा सेठजी ! लेकिन तुम्हारी पेढ़ी भी बन्द हो जाएगी।"

"कैसे?"

"आपने मेरे द्वारा इन्कमटैक्स के बचाव के लिए कई ऐसे-वैसे काम करवाये हैं। मैं आपकी सब पोल जानता हूँ। इन्कमटैक्सवालों को जाकर कह दूँगा तो....।"

सेठ ने कहाः 1500 ही नहीं 1600 ले, पर रह यहीं।"

क्यों ? मुनीम सेठ की कमजोरी जानता है इसीलिए सेठ का गला घोंटता है। ऐसे ही तुम भी कुछ छोटी-मोटी अपेक्षा करके मन से कुछ गलत काम करवा लेते हो तभी मनरूपी मुनीम तुम्हारा गला घोंटता आ रहा है। सदियों से, युगों से तुम्हारा गला घोंटा जा रहा है। तुमको पता ही नहीं भैया ! कब तक अपना गला घुटवाओगे ? कब तक चार टुकड़ों के लिए जीवन को दाँव पर लगाओगे ? कब तक बाहर की तुच्छ वाहवाही के लिए अपने को दाँव पर लगाते रहोगे ? अब जागो। तुच्छ अपेक्षाओं को छोड़ो। देह की प्रतिष्ठा, पूजा, यश, मन, बड़ाई को लात मारो। जिसको गरज होगी वह तुम्हारा यशोगान करके अपने दिल को पवित्र कर ले यह अलग बात है लेकिन तुम अपने यश की इच्छा छोड़ो। यशस्वी काम करो, यश की इच्छा छोड़ो। बुरे काम से बचो लेकिन अपनी बुराई होती है तो खुश हो जाओ कि मेरे पाप धुल रहे हैं। कोई तुम्हारी अच्छाई करे तो सिकुड़ जाओ। लोग प्रशंसा करते हैं तो तुम्हारे पुण्य क्षीण होते हैं। निन्दा करते हैं तो पाप क्षीण होते हैं।

ऋषि दयानन्द अलीगढ़ में प्रवचन कर रहे थेः "अल्लाह हो अकबर... करके चिल्ला रहे हो-

कंकड़ पत्थर जोरिके मसीद दिया बनाय।
ता पर चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय?

सुबह को उठकर चिल्लाते हो, लोगों की शांति भंग करते हो...."

इस प्रकार ऋषि दयानन्द ने रुआंटे खड़े हो जाये ऐसा प्रवचन अलीगढ़ में दिया। मुसलमानों के अगवानों ने जाँचा कि यह साधु कहाँ ठहरा है? पता चला कि हिन्दुओं ने तो इस साधु का बहिष्कार किया है। ऋषि दयानन्द के लिए हिन्दुओं की धर्मशाला में जगह नहीं, हिन्दुओं के मठ-मन्दिर में जगह नहीं, हिन्दुओं के आश्रम में जगह नहीं, हिन्दुओं की होटलों में जगह नहीं आखिर एक मुसलमान ने इनको रहने को दिया है। ये मुसलमान के वहाँ रहते हैं।

मुसलमानों का (सीधा) लेकर हाथ से भोजन बनाकर खाते हैं और रात को प्रवचन में मुसलमानों को ही गाली देते हैं ? क्या बात है बाबा की ?

अगवान मिलने को आये ऋषि दयानन्द सेः

"महाराज ! आप हमारे कुराने शरीफ पर प्रवचन करके हमारे पोल खोलकर हमको दो कौड़ी का बना देते हैं। हिन्दुओं ने आपका बहिष्कार किया। मुसलमान ने आपको रहने को घर दिया, खाने को सीधा सामान दिया और फिर उन्हीं को आप डाँटते हो ?"

ऋषि दयानन्द ने कहाः "भैया ! जिसने आवास दिया, जिसने अन्न दिया उस कौम को न जगाऊँ तो मैं क्या करूँ ? कृतघ्न हो जाऊँ ?"

ऐसे ही तुम लोगों ने मुझे बुलाया, आवास दिया, खिलाने की व्यवस्था की, मंच बना दिया, तो मैं तुमको न जगाऊँ तो काले कुत्तों को और भैंसों को जगाऊँगा ? तुमको नहीं चमकाऊँगा तो किसको चमकाऊँगा ? पत्थर और कोयले को चमकाऊँगा ?

तुम्हें चमकना होगा। अपेक्षाओं की काई हटाओ। जल कितना ही सुन्दर हो, निर्मल हो लेकिन काई से ढका हो तो उसकी क्या कीमत हैं ?

जल को प्रकट होने दो। तुम्हारा परमात्मा महान् सुन्दर है। किन्तु अपेक्षाओं की काई से ढका है। इसीलिए तुम सिकुड़ते हो, चिन्तित होते हो। अभी तुम देवी-देवता आकर तुम्हारा दीदार करेंगे और अपना भाग्य बना लेंगे। यह मैं 'चेलेंज' से कहता हूँ।

कहने का तात्पर्य यह नहीं कि शिवजी को दूध नहीं चढ़ाओ। देखना, कहीं समझने में गड़बड़ न हो जाय ! पर हाँ, दूध चढ़ाते-चढ़ाते अपना 'मैं' भी चढ़ा दिया करो, अहंकार भी समर्पित किया करो।

हम लोग क्या करते हैं ? दूध चढ़ाते समय ध्यान रखते हैं कि कोई देखता है कि नहीं। हजारों को कहते फिरेंगे कि हमने महान् अभिषेक किया, महारूद्री की। खाक डाल दी अपने सत्कृत्य पर। सत्कृत्य को छुपा दो। वह और गति पकड़ेगा, जोर पकड़ेगा। दुष्कृत्य को प्रकट होने दो, यह मिट जायेगा। हम लोग क्या करते हैं ? सत्कार्यों को जाहिर करते हैं और दुष्कृत्यों को छुपाते हैं। भीतर हमारा खोखला हो जाता है। भीतर से काँपते रहते हैं।

अरे ! विश्वनियंता तुम्हारे साथ है और तुम काँप रहे हो ? विश्वेश्वर सदा साथ है और तुम चिन्तिन रहे तो बड़े शर्म की बात है। दुःख और चिन्ता में तो वे डूबें जिनके माई-बाप मर गये हों। तुम्हारे माई-बाप तो हृदय की हर धड़कन में तुम्हारे साथ हैं। फिर क्यों दुःखी होते हो ? क्यों चिन्तिन होते हो ? क्यों भयभीत होते हो ?

केवल व्यवहार में अदक्षता है, असावधानी है। विचारों में असावधानी है।

बेवकूफी जैसा दुनियाँ में और कोई पाप नहीं। सारे दोष, सारे दुःख बुद्धि की कमी के कारण, अपनी बेवकूफी के कारण उठाने पड़ते हैं। इसलिए बेवकूफी को हटाओ। मनरूपी मुनीम

को सिर पर चढ़ातेत जाओगे, उससे गलत काम करवाते जाओगे तो मुनीम आप पर शासन करता रहेगा।

भैया ! मेरी भाषा आपको जरा कड़क लगती होगी लेकिन मैं आपको परम मांगल्य के द्वार पर पहुँचना चाहता हूँ। मैं आपको प्यार करता हूँ। आपका यश करवाना चाहता हूँ, आपको चमकाना चाहता हूँ। पर हाँ, आपके मन की कल्पनाओं को नहीं, आपके मन के धोखों को नहीं अपितु आपको चमकाना चाहता हूँ। आपका असली स्वरूप प्रकट करना चाहता हूँ।

शुद्ध रहो। स्वच्छ रहो। दोष को जिनता दबायेंगे उतना दोष का गहरा प्रभाव पड़ जायगा। लोभ-लालच को जितना पोसेंगे उतना उसका गहरा प्रभाव हो जायगा।

हमारे भीतर अन्तर्यामी परमात्मा सदा मौजूद बैठा है। हर समय वह अपना निर्णय सुना रहा है, 'यह ठीक है.... यह गलत है। यह शुद्ध है... यह अशुद्ध है।' वह सदा जागृत रहकर बोल रहा है पर हमारी अपेक्षाओं का तूफान इतना है कि उसका अनहद नाद सुनाई नहीं पड़ता।

सेठ दीवानखाने में शांति से बैठे थे। दीवार पर घड़ी की टिक्.... टिक्... आवाज आ रही थी। इतने में मार्ग से बारात गुजरी। उसके शोरगुल में घड़ी की टिक्... टिक्... आवाज दब गई। सेठ जी ने पूछाः 'घड़ी बन्द हो गई क्या ? जरा देखो तो ?' नौकर ने जाँचकर कहाः 'सेठ जी ! घड़ी तो टिक्... टिक्... आवाज से चल रही है। बारातियों के शोरगुल के कारण आवाज सुनाई नहीं देती।'

ऐसे ही इन्द्रियोंरूपी बारातियों के साथ आप जुड़ जाते हैं। विषयों के शोरगुल में बह जाते हैं और अन्तर्यामी की आवाज का अनादर कर देते हैं। अन्तर्यामी ईश्वर की आवाज का अनादर करोगे तो कुदरत तुम्हारा अनादर करेगी। चार पैरवाला बना देगी। डण्डे पड़ेंगे और रेत उठानी पड़ेगी तब क्या करोगे ? घोड़ा बन जाओगे और चाबुक खाते हुए गाड़ी खींचना पड़ेगा तब क्या करोगे ? तब तुम्हारे चित्र और प्रशंसक क्या काम आएंगे ?

'राजाधिराज गौब्राह्मणप्रतिपाल अन्नदाता घणी खम्मा.... घणी खम्मा....' महाराजा गुजरते तो फूलों से सड़कें लद जातीं ऐसे लोगों का अब क्या हाल है, योगदृष्टि से जरा देखो तो.... दया आ जायेगी उनकी हालत पर।

बाह्य चीजों की अपेक्षा करके अपने अन्दर का खजाना मत खोइये। बिल्ली के बदले में अपनी माँ को मत खोइये। माँ के बदले में, घर के चूहे भगाने के लिए बिल्ली लाते हो तो अपने साथ बड़ा धोखा करते हो।

ब्रह्मविद्यारूपी माता है, आत्मज्ञानरूपी माता है, गीताज्ञानरूपी माता है। इस आत्मप्रकाशरूपी माता का अनादर करके बाह्य चीजों की गुलामी नहीं करनी चाहिए।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष.....।

अपना हृदय जितना शुद्ध होगा उतना ईश्वरीय बल तुम्हारे द्वारा काम करेगा। साधारण मनुष्य सोचता है कि 'मैंने किया.... मैंने किया....' किन्तु जो सच्चा भक्त है, समझदार है वह

देखता है कि यह मेरी अपेक्षाओं से नहीं हुआ। विश्वनियंता ने मेरे द्वारा करवाया। उसी प्रभु की जय हो... जय हो....। ऐसा समर्पण का भाव होगा, अकर्त्तापन का भाव होगा तो विराट परमात्मा उसके द्वारा और अधिक अच्छे-अच्छे कार्य करवायेगा।

सब करवाता है प्रभु, यशस्वी बनाता है परमात्मा और तुम ले बैठों कि, 'मैंने किया..... मैंने किया....' अपने अहंकार के ढोल पीटते रहो तो यह कृतघ्नता है। अहंकार को आगे करने से योग्यता क्षीण हो जाती है।

तुम्हारे संकल्प के पीछे जितनी पवित्रता और दृढ़ता होगी, तुम जितने उन्नत विचार करोगे उतनी ही तुम्हें उस प्रभु की अधिक सत्ता और स्फूर्ति मिला करेगी।

पुत्र पिता के प्रति वफादार रहता है, कृतज्ञ रहता है और बोलता है कि सब पिता जी की संपत्ति है, मैंने तो केवल सँभाला है, तो पिता जी सारी संपत्ति पुत्र के हवाले करने को तत्पर हैं। ऐसे ही ईश्वरीय शक्तियाँ तुम्हारे द्वारा काम करने को तत्पर हैं। तुम क्यों बेईमानी कर रहे हो ? क्यों अपेक्षाएँ कर रहे हो ? क्यों सिकुड़ रहे हो ? क्यों मन के गुलाम बन रहे हो ? मन की कल्पनाओं के पीछे भाग रहे हो ? मारो ॐकार की गदा...। अपेक्षाओं को चूर... चूर कर दो। वासनाओं को कुचल डालो। फिर देखो, क्या रहस्य खुलने लगते हैं !

अगर तुम **अनपेक्षः** होकर काम करने लगो तो धिक्कार है उन किन्नर और गन्धर्वों को जो तुम्हारे सेवा में तत्पर न हो जाएँ। वे हवाएँ भी तुम्हारे हवाले हो जाएगी और देव भी तुम्हारे अनुकूल होने का शपथ ले लेंगे।

कर्त्तव्यों से उदासीन मत बनो, एषणाओं से उदासीन बनो, अपेक्षाओं से उदासीन बनो। कर्म में प्रमाद नहीं अपितु कुशलता लाओ। अपनी योग्यता का विकास करो। **योगः कर्मसु कौशलम्।** कर्म में कुशलता ही योग है। कर्म करके भी कर्म-फल से अनासक्त रहना यह योग है।

जबसे सनातन धर्म के लोगों ने, हिन्दू धर्म के लोगों ने अकुशलता को सिर पर सवार कर दिया, बुद्धुपने को सिर पर सवार कर दिया, 'उदासीन बनो... उदासीन बनो....' का पलायनवादी मार्ग पकड़ लिया तबसे हिन्दू धर्म की गरिमा दबती गई। धार्मिकता की और समाज की हानि होने लगी। 'अपना क्या ? जो करेगा सो भरेगा....' करके अच्छे लोग किनारा कर जाते हैं तो समाज की बागडोर बदमाशों के हाथ में आ जाती है। आलसी, पलायनवादी और मूर्ख होकर ठगा जाना यह कोई धार्मिकता का चिन्ह नहीं है।

अपना कर्त्तव्य बराबर पालो। नेता हो तो ठीक से नेता बनो। पार्लियामेंट में जाओ तो सरकारी व्यर्थ के खर्च और अपव्यय कम हो, थकी-मंदी-गरीब जनता का शोषण न हो, टेक्स पर टेक्स न पड़े, प्रजा संयमी हो और चैन का जीवन बिता सके ऐसा यत्न करो। जिससे तुम इस लोक में यशस्वी बनो और परलोक में परम पद की प्राप्ति हो जाये।

समाजसेवक बनो तो ऐसे निरपेक्ष बनो कि ईश्वरीय प्रभाव तुम्हारे द्वारा काम करने लगे। कोई वाहवाही करने लगे तो उसकी बात को टाल दो।

तुम महिला हो तो ऐसी रोटी बनाओ कि खाने वाले का स्वास्थ्य और चारित्र्य दृढ़ होने लगे। सब्जी बनाओ तो ऐसी बनाओ की न ज्यादा नमक न ज्यादा मिर्च। नवजवान खाने वाले हैं तो मिर्च कम डालो, काली मिर्च का उपयोग करो। आँवले का उपयोग करो। बच्चे तन्दुरुस्त रहें ऐसी बाते जानकर जीवन को तेजोमय बनाओ।

ऐसा नहीं कि अभी-अभी बच्चे ने दूध पिया हो और ऊपर से मक्खन खिलाओ। 'हम तो भाई भगत लोग हैं। हमको सब चलता है....' ऐसा करके भगतड़ा नहीं होना है। बच्चे के शरीर में कोढ़ के डाघ करने हैं क्या ? नहीं। तो पहले मक्खन खिला दो बाद में दूध।

कभी दो ठण्डी चीजें, दो खट्टी चीजें साथ में नहीं खानी चाहिए, जैसे दही भी खाया और नींबू भी खाया, मौसमी का रस और ग्लुकोज मिला दिया। यह तो बीमारी को बुलाना है।

व्यवहार में दक्ष बनना चाहिए, होशियार रहना चाहिए।

स्नान करो तो शरीर को रगड़-रगड़कर, मल-मलकर स्नान करो ताकि नस-नाड़ियाँ मजबूत रहे। शरीर दुर्बल होगा तो जरा सी बीमारी में कराहने लगोगेः 'एं.... एं..... एं....एं... एं.. ।' अरे 'एं... एं...' क्या करते हो ? उसका ठीक उपाय खोजो। जाँच करो कि बीमारी हुई कैसे ? क्यों हुई ? ज्यादा खाय ? ज्यादा भूखामरी की ?

आज एकादशी का उपवास और कल पेट में ठूँस-ठूँसकर लड्डू ! बीमार नहीं पड़ोगे तो और क्या होगा ? एक दिन उपवास किया तो दूसरे दिन सादा सुपाच्य भोजन खाओ।

रात्रि को ठूँस-ठूँसकर भोजन न खुद करो न दूसरों को कराओ।

भगवान बुद्ध कहा करते थेः **अप्पदीपो भव।** अपना दीया आप बनो।

जिन कारणों से तुम्हारा मन दुर्बल होता हो, जिन आहार और पदार्थों से तुम्हारा तन बीमार होता हो, दुर्बल होता हो, उन सबको विष की नाँई त्याग दो। जिन कारणों से मन बलवान होता हो, तन मजबूत होता हो उन कारणों को आप आमंत्रित कर दो। यह है दक्षता।

'क्या करें...? पार्टी में गये थे, शादी में गये थे, लोगों ने कहा यह जरा-सा खा लो, यह पी लो। पीते नहीं थे, शादी में जरा-सा पी लिया तबसे आदत बिगड़ गई।'

अरे ठोकर मारो ऐसी पार्टियों को। अपने निश्चय में डट जाओ, अडिग हो जाओ तो वे भी अपनी पार्टी का रूख बदल देंगे। पतन के मार्ग में जाने वाले लोगों को कंपनी देकर अपना सत्यानाश मत करो। मौत के समय वे लोग सहायरूप बनेंगे क्या ? यमपुरी में जायेंगे तब उनकी कंपनी काम आयगी क्या ? कंपनी उनको दो जिनसे अपनी भक्ति बढ़ती हो, आत्मबल बढ़ता हो, अपनी सच्चाई बढ़ती हो, दृढ़ता बढ़ती हो।

इस बात पर हमारे गुरुदेव बहुत जोर दिया करते थे। एक बार गुलाब दिखाकर मुझसे कहा था, अभी तक ठीक से याद है। वे बोलेः

"देख बेटा ! यह क्या है ?"

"साँईं ! यह तो गुलाब है।"

"यह ले जा दुकान में और डालडा के डिब्बे पर रख, गुड़ के थैले पर रख, शक्कर की बोरी पर रख, तिल के थैले पर रख, दुकान की सारी चीजों पर रख। फिर सूँघेगा तो खुश्बू किसकी आयेगी ?

"खुश्बू गुलाब की ही आयेगी।"

"नाली के आगे रख, फिर सूँघेगा तो खुश्बू किसकी आयगी ?"

"गुलाब की ही।"

"बस ऐसा तू बन जाना। दूसरों की दुर्गन्ध अपने में मत आने देना। अपनी सुगन्ध फैलाते रहना, आगे बढ़ते रहना।"

मेरे गुरुदेव ने मुझसे कहा था और मैं आप लोगों को कह रहा हूँ- तू गुलाब होकर महक तुझे जमाना जाने। दूसरों की बदबू से बचो। अपनी मन की ही चालबाजी से बचो। कब तक मन के गुलाम बने रहोगे ? Nothing is impossible. Everything is possible. असंभव कुछ नहीं, सब कुछ संभव है। जब वालिया लुटेरा वाल्मीकि ऋषि बन सकता है तो तुम मालिक के प्यारे नहीं बन सकते ? मालिक के प्यारे नहीं बनोगे तो हम आपको मार से, प्यार से, पुचकार से भी मालिक के प्यारे बनाएँगे। आप जाओगे कहाँ ? हम आपको उस आनंदस्वरूप आत्म-सागर में बहाकर ले जाएँगे। आप स्वयं रस-स्वरूप बन जाओगे। बन क्या जाओगे, हो ही यह जान लोगे। वह अच्छा न लगे तो चाहे वापस लौट आना पर एक बार हम ले अवश्य जाएंगे।

कर्षति आकर्षति इति कृष्णः। जो आकर्षित कर ले, खींच ले, आनन्दित कर दे उसका नाम है कृष्ण।

भगत का मतलब यह नहीं कि मौका आने पर 'अपना क्या ?' करके कर्त्तव्य से फिसल जाय। नहीं। आप अपना कर्त्तव्य पूरा करो।

ऑफिस जाओ तो ऑफिस का काम करो कि प्रजाजनों के समय-शक्ति का ह्रास न हो। उनको धक्के खाने पड़े ऐसे टालमटोल काम नहीं करो। कामचोर होकर अपनी शक्तियों का नाश मत करो।

दुकानदारी करते हो तो ग्राहक के साथ ऐसा बढ़िया व्यवहार करो कि बस...। फिर उसकी ताकत है कि दूसरी जगह जाय ! सबकी गहराई में परमात्मा देखकर कार्य करो।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पैठण में एकनाथ जी महाराज हो गये। वे जब दस-बारह साल के थे तब देवगढ़ गये और दीवान साहेब जनार्दन स्वामी के शिष्य बने।

जिस आदमी का कोई सदगुरु नहीं उस आदमी जैसा अभागा दुनियाँ में मिलना मुश्किल होगा। जो निगुरा है, चाहे दुनियाँ की सारी विद्याएँ जानता हो, बाल की खाल उतारता हो, बड़ा वैज्ञानिक हो, 'सब कुछ जानता हो फिर भी जिसके जीवन में कोई सदगुरु नहीं है वह शिक्षित हो सकता है, दीक्षित नहीं।

जिसके जीवन में दीक्षा नहीं है वह चाहे लोगों की नज़रों में कितने भी ऊँचे पहाड़ों पर रहता हो पर भीतर में असन्तुष्ट होगा, दुःखी होगा। जो दीक्षित है वह चाहे रमण महर्षि जैसा हो, रामकृष्ण जैसा हो, कौपीन का टुकड़ा धारण करने वाला जड़भरत या तो शुकदेव जैसा हो, वह ईश्वर के साथ खेलनेवाला होता है, भीतर से पूर्ण तृप्त रहता है।

नन्हा सा बालक एकनाथ रात्रि को उठा, चुपके दरवाजा खोला, दादा-दादी को सोते हुए छोड़कर घर से निकल गया। पैदल चलकर देवगढ़ पहुँचा। वहाँ के दीवान साहब जनार्दन स्वामी के चरणों में जा पहुँचा। दीवान साहब ने कहाः

"मैं तो किसी को शिष्य नहीं बनाता।"

"महाराज ! आप भले शिष्य नहीं बनाते मगर मैं आपको गुरुदेव के रूप में स्वीकार करके दीक्षित होना चाहता हूँ।"

दीक्षा का अर्थ क्या है ? दी = जो दिया जाता है। क्षा = जो पचाया जाता है।

सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म का सामर्थ्य जो दे सकते हैं वे 'दी' की जगह पर हैं और उस सामर्थ्य को जो पचा सकता है वह 'क्षा' की जगह पर है। इन दोनों का जो मेल है उसे दीक्षा कहते हैं।

'गुरु' का मतलब क्या ? गु = अन्धकार। कई जन्मों में हमारे स्वरूप पर अविद्या का अन्धकार पड़ा है। 'रू' = प्रकाश। अविद्या के अन्धकार को आत्मज्ञान के प्रकाश से जो हटा दें उनका नाम गुरु है। कान फूँककर, कंठी बाँधकर दक्षिणा छीन ले उसका नाम गुरु नहीं है। वह कुलगुरु हो सकता है, सांप्रदायिक गुरु हो सकता है। सच्चे गुरु तो वे हैं जो तुम्हारी अविद्या को मिटाकर तुम्हें अपनी महिमा में जगा दें।

कबीर जी ने कहाः

कबीरा जोगी जगत गुरु तजे जगत की आस।
जो जग का आशा करे तो जग गुरु वह दास।।

जो जगत की आशा से रहित है, संसार के पदार्थों की आसक्ति से मुक्त है, **अनपेक्षः** है वह सच्चा गुरु है। जो जगत की आशा करता है वह तो जगत का दास है और जगत उसका गुरु है।

जिसके जीवन में ऐसे गुरु आ जाते हैं उसका उद्धार तो हो ही जाता है, उसकी निगाहों में आनेवाला भी निष्पाप हो जाता है। जो सच्चे महापुरुष हैं उनके दर्शन से, उनको छूकर आनेवाली हवा के स्पर्श से भी हमें हृदय में तसल्ली मिलने लगती है। ऐसा अनुभव करनेवाले बोलते भी हैं-

तुम तसल्ली न दो, सिर्फ बैठे ही रहो....।

मेहफिल का रंग बदल जाएगा।

गिरता हुआ दिल भी सँभल जायगा।।

हे गुरुदेव ! आप आश्वासन न दो, प्रवचन न करो, केवल हमारे समक्ष विराजमान रहो.... आपका दीदार होता रहे.... बस। दर्शन मात्र से हमें बहुत-बहुत लाभ होता है।

अपेक्षाओं में, कामनाओं में, चिन्ताओं में, भय में, ग्लानि में, घृणा में, राग-द्वेष में, लोभ-मोह में हमारा दिल गिर रहा है। पूर्ण बोधवान आत्मवेत्ता सदगुरुदेव को देखते ही हमारा गिरता हुआ दिल सँभलने लगता है।

बालकर एकनाथ ने दीवान साहब को रिझाया। दीवान साहब ने कहाः "मैं तो राजा का नौकर हूँ। देवगढ़ के राजा साहब का मैं दीवान हूँ। तू किसी साधु-सन्यासी का चेला हो जा।"

"महाराज ! **साधयन्ते परं कार्यं इति साधु।** जिसने परम कार्य साध लिया है वह साधु है। आपने परम कार्य साध लिया है देव ! मुझे अपनी शरण में रहने दो।"

सदगुरु ने बालक एकनाथ को शरण में रख लिया। एकनाथ जी वर्षों तक गुरु की सेवा में रहे। वे हर समय कुछ न कुछ सेवा ढूँढ लेते थे। बड़ी तत्परता से, बड़े चाव से, उत्साहपूर्वक सेवा करके अपना समय सार्थक कर लेते थे। हररोज प्रभात काल में दीवान साहब ध्यानमग्न जो जाते तब एकनाथ जी द्वार के बाहर चौकीदार बनकर खड़े हो जाते ताकि कोई गुरुदेव के ध्यान में विक्षेप न डाले। गुरु महाराज स्नान करते तब एकनाथ जी रामा बन जाते, मौसम के अनुसार गर्म या ठण्डा पानी रख देते। कपड़े ला देते गुरुदेव के उतरे हुए कपड़े धो लेते। गुरु महाराज बेटा स्कूल जाता तो सेवक बनकर एकनाथ जी उसे छोड़ने और लेने जाते। दीवान साहब ऑफिस का काम करते तब एकनाथजी मेहता जी बनकर सेवा में जुट जाते। हर समय सेवा खोज लेते।

जिन सेव्या तिन पाया मान....।

सेवक को सेवा में जो आनन्द आता है वह सेवा की प्रशंसा से नहीं आता। सेवा की प्रशंसा में जिसे आनन्द आता है वह सच्चा सेवक भी नहीं होता।

आप अपनी सेवा, अपना सत्कर्म, अपना जप-तप, अपनी साधना जितनी गुप्त रखोगे उतनी आपकी योग्यता बढ़ेगी। अपने सत्कर्मों का जितना प्रदर्शन करोगे, लोगों के हृदय में उतनी तुम्हारी योग्यता नष्ट होगीष लोग बाहर से तो सलामी कर देंगे किन्तु भीतर समझेंगे कि यह तो यूँ ही कर दिया। कोई नेता बोलेगा तो लोग तालियाँ बजाएँगे, फिर पीछे बोलेंगे, यह तो ऐसा है। संत महापुरुषों के लिए ऐसा नहीं होता। महात्मा की गैरहाजरी में उनके फोटो की, प्रतिमाओं की भी पूजा होती है।

हम अपने श्रोताओं को यह सब क्यों सुना रहे हैं ? क्योंकि उन्हें जगाना है। मैं तुम लोगों को दिखावे का यश नहीं देना चाहता। वास्तविक यश के भागी बनो ऐसा मैं चाहता हूँ। इसीलिए सेवाधर्म के संकेत बता रहा हूँ।

अब वापस देवगढ़ चलते हैं।

प्रातःकाल का समय है। दीवान साहब जनार्दन स्वामी अपने ध्यान-खण्ड में समाधिस्थ हैं। बाहर एकनाथ जी सतर्क होकर पहरा दे रहे हैं। इतने में देवगढ़ के राजा का संदेशवाहक आदेशपात्र लेकर भागता-भागता आ पहुँचा। शीघ्रता से दीवान साहब के पास जाने लगा तो एकनाथ जी गर्ज उठेः "रूको।"

"अरे क्या रुकना है ? अभी राजा साहब को दीवान जी की खास जरूरत है, शत्रुओं ने अपने नगर पर घेरा डाला है। तोपों की आवाज आ रही है, सुनते नहीं ? राजा साहब ने दीवानजी को तत्काल बुलाया है। फौजी लोग दीवान साहब को खूब मानते हैं। वे संकेत करेंगे तो फौज में प्राणबल आ जायेगा। अपने गुरुजी को जल्दी बुलाओ।"

"नहीं....अभी नहीं। गुरुदेव अभी राजाओं के राजा विश्वेश्वर से मिले हैं। अभी उनको राजाजी का आदेशपत्र नहीं पहुँचेगा।"

"अरे बच्चा ! तू क्या करता है ? कैसी विकट परिस्थिति....।"

"कुछ भी हो, मैं अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ हूँ। चाहे कोई भाला भोंक दे, मैं अपने निश्चय से च्युत नहीं होऊँगा।"

"ऐ बालक ! मैं बहुत जल्दी में हूँ। अपने नगर पर खतरा है। समय गँवाया तो संभव है शत्रुओं का दल नगर को खेदान-मैदान कर देगा। तू जल्दी मुझे दीवानजी से मिलने दे।"

"मेरे गुरुदेव से अभी कोई नहीं मिल सकता।" एकनाथजी अपने कर्त्तव्य में दृढ़ रहे।"

"अरे छोकरा ! "गुरु.... गुरु..." करके कब तक समय बिगाड़ता रहेगा ? तेरे गुरु तो राजा साहब के नौकर हैं।" दूत अब व्याकुल होने लगा था।

"नौकर तो गुरुदेव का शरीर हो सकता है। मेरे गुरु तो जो अनंत अनंत ब्रह्मांड के स्वामी हैं वहाँ पहुँचे हैं। मेरे गुरुदेव के लिए तुम क्या बोलते हो ?"

"अरे पगले ! तू समय को नहीं पहचान रहा है ? मैं राजा साहब का खास आदमी हूँ और दीवानजी राजा साहब के वहाँ काम करते हैं। उनके लिए मैं राजा साहब का परवाना लाया हूँ। शीघ्रातिशीघ्र उन्हें ले जाना है। राज्य पर खतरा है। सुन, तोपों की आवाज आ रही है। तू पागलपन करेगा तो नहीं चलेगा। ले यह परवाना। मैं तो जाता हूँ। अब तेरी जिम्मेदारी है।" दूत रवाना हो गया।

परवाना हाथ में उलट-पलटकर एकनाथजी सोचने लगेः "अब क्या करना चाहिए ? गुरुदेव ! अब आप ही प्रेरणा कीजिये। अगर मैं आपको जगाता हूँ तो आपके मन में होगा कि इतनी-सी सेवा नहीं कर पाया ? अगर नहीं जगाता हूँ तो बाद में आपको होगा कि अरे नादान ! जब राज्य के कल्याण का प्रश्न था, सुरक्षा का प्रश्न था तो मुझे जगाकर कह देता ? राज्य पर शत्रुओं ने घेरा डाला और तू ऐसे ही बैठा रहा चुपचाप, मुझे बताया तक नहीं ? बस, यही है तेरी सेवा ?

गुरुदेव....! गुरुदेव....!! अब मैं व्यवहार में कैसे दक्ष बनूँ ? आपको जगाता हूँ तो भी और नहीं जगाता हूँ तो भी मेरी अदक्षता ही सिद्ध हो सकती है। मैं क्या करूँ मेरे प्रभु ?"

आपके जीवन में भी ऐसा प्रश्न आएगा ही। इन इतिहासों की कथाओं के साथ हमारे जीवन की कथाएँ भी जुड़ी हैं। कोई भी कथा तुम्हारे जीवन की कथा से नितान्त अलग नहीं हो सकती। चाहे वह कथा रामजी की हो या श्रीकृष्ण की हो, देवी-देवता की हो या फरिश्ते की हो, जोगीश्वर की हो या झुलेलाल की हो, उन कथाओं के साथ तुम्हारे जीवन की कथा भी मिलती जुलती है। इन सारी कथाओं से सार लेकर तुम्हें अपने जीवन की कथा सुलझाना है।

एकनाथ जी भीतर ही भीतर गुरुदेव से मार्गदर्शन पाने के लिए पूछ रहे हैं, आर्तभाव से प्रार्थना कर रहे हैं, व्याकुल हो रहे हैं। आँखों से टप....टप... आँसू बह रहे हैं। "नाथ ! अब बताओ, मैं क्या करूँ.... मैं क्या करूँ ?"

भावपूर्वक भगवान से प्रार्थना की जाय, हृदयपूर्वक गुरुदेव से प्रार्थना की जाय तो तुरन्त सुनी जाती है। ऐसा जरूरी नहीं कि प्रार्थना में कोई खास शब्द-रचना होनी चाहिए, प्रार्थना श्लोकबद्ध हो, दोहे-चौपाई में हो, कोई विशेष भाषा में हो। नहीं। प्रार्थना कैसे भी की जाय लेकिन अपने हृदय के निजी भाव से रंगी हुई हो, दिल की गहराई से की हुई तो वह तुरन्त सुनी जाती है।

एकनाथजी ने हृदयपूर्वक प्रार्थना की और रोये।

संसारी संसार के लिए रोता है जबकि प्रभु और सदगुरु का प्यारा प्रभु के लिए, सदगुरु के लिए रोता है।

एकनाथ जी रोये। हृदय से प्रार्थना की धारा चली, आँखों से आँसुओं की धारा चली। फिर आँखे बन्द हो गई, थोड़ी देर शांत हो गये। गुरुतत्त्व का संस्पर्श हो गया। कुछ तसल्ली मिल गई। आँखें खोली। सामने देखा तो गुरुदेव जिन वस्त्रों को धारण करके फौज की सलामी लेने जाते थे वे वस्त्र टँगे हुए हैं। एकनाथजी के चित्त में चमकारा हुआ, कुछ युक्ति हाथ लग गई। मुख पर एक विलक्षण दीप्ति छा गई। वे उठे, गुरुदेव के वस्त्र पहन लिए, घोड़े पर छलांग मारी और पहुँच गये फौजियों के समक्ष। उनको हिम्मत देते, उनका उत्साह जगाते हुए, उनकी देशभक्ति को प्रकटाते हुए बोलने लगेः

"ऐ देश के वीर जवानों ! अपनी मातृभूमि पर शत्रुओं ने आक्रमण किया है। आज मातृभूमि के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करने का मौका आया है। देखते क्या हो ? टूट पड़ो आततायी नराधमों पर। विजय हमारी ही है। सदा धर्म की जय होती आयी है। अधर्मी लोग चाहे हजारों की संख्या में हों लेकिन धर्मवीर अगर धर्म में डटकर कर्त्तव्य लगे रहे तो ईश्वरीय शक्ति उन वीरों के लिए कार्य करेगी। पांडव पाँच ही थे, कौरव सौ थे फिर भी धर्म के पक्षकार पाँच पांडव विजयी बने। कौरव-कुल नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

क्या अपने पास साधन कम हैं ऐसा सोचकर झिझकते हो ? ऐ बहादुर जवान ! जरा सोचो तो सही ! लंकापति रावण का मुकाबलता करते समय रामजी के पास कौन-सा बड़ा सैन्य था ? वे धर्म के लिए युद्ध खेल रहे थे तो रीछ और बन्दरों ने उनके लिए कार्य किया।

क्रियासिद्धि सत्वे भवति महतां नोपकरणे।

महान् वीरों का विजय अपने सत्त्व के कारण होता है, साधनों के कारण नहीं।

आज हमें अपनी माँ-बेटियो की सुरक्षा के लिए, अपनी मातृभूमि की सुरक्षा के लिए हिम्मत जुटाना है। 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' हमें अधर्मी दुष्टों का मुकाबला करना है। अपने स्वार्थ के लिए नहीं, समष्टि हित के लिए समरांगण में कूद पड़ना है। ईश्वर का अनंत बल हमारे साथ है, डरो नहीं।"

जो तो को काँटा बोए वा को बो तू भाला।
वो भी क्या याद करेगा पड़ा था किसी से पाला।।

"ऐ वीर जवानों ! शस्त्र-सज्ज होकर निकल पड़ो धर्मयुद्ध खेलने के लिए।"

फौजी जवानों को आज दीवान साहब का शौर्यपूर्ण कुछ विलक्षण स्वरूप दिखाई दिया। ललकार सुनकर वे बहादुर जवान शत्रु सेना पर टूट पड़े और उसे तहस-नहस करके मार भगाया।

तुम अगर ब्रह्मविद्या के पथिक हो, ईश्वर के मार्ग पर चल रहे हो, सत्य की तरफ चल रहे हो तो वातावरण तुम्हारे अनुकूल आज नहीं कल होकर रहेगा। तुम डरो नहीं।

ऐसे नेताओं को मैं जानता हूँ जिनके झुण्ड के झुण्ड एम.पी. और एम.एल.ए. हाथ में थे। उनके पुण्य क्षीण हो गये तो कुर्सी से हटाये गये, दूसरे लोग आ गये और मुख्य मंत्री बन गये।

मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूँ कि जो जेल में थे और समय पाकर राष्ट्रपति बन गये। ऐसे लोगों को भी हम सब जानते हैं जिन पर घोर अन्याय हो रहा था, बार-बार जेल में डाल दिये जाते थे फिर भी धर्म को पकड़े रहे वे समय पाकर राष्ट्रपिता होकर आदर पाने लगे।

आपके अन्दर ईश्वर का असीम बल छुपा है भैया ! आप डटे रहो अपनी निष्ठा में, अपने धर्म में, अपने कर्त्तव्य कर्म में। लगे रहो सत्कर्म में। अपनी निष्ठा छोड़ो मत। ऐसा नहीं कि गंगा गये तो गंगा दास.... यमुना गये तो यमुनादास... नर्मदा गये तो नर्मदा शंकर....। गये बिहार तो हो गये बिहारी लाल के।

अपनी आत्म-निष्ठ का भरोसा करो।

जिसके जीवन में आत्मज्ञान पाने का सर्वोच्च लक्ष्य नहीं है वह इधर-उधर के झोंकों में उलझ जायेगा।

शिवजी की पूजा करो लेकिन शिवतत्त्व को अपने से भिन्न मानकर नहीं। शिवजी की दृष्टि में समानता है। उनके दरबार में परस्पर जन्मजात शत्रु प्राणी भी शांत भाव से बैठते हैं। तुम अपने जीवन में समानता लाओ तो शिवजी तुम्हें प्रसन्न मिलेंगे।

हिलाने वाली परिस्थितियाँ तो आयेंगी, पर तुम दक्ष रहो।

अपनी फौज की विजय हो गई। एकनाथ जी वापस लौट आये। अपने साधारण वेश में पुनः चौकीदार बैठ गये, मानो कुछ हुआ ही न हो। नगर के लोगों में चर्चा हो रही थीः

"अरे भाई ! दीवान साहब जनार्दन स्वामी धन्य हैं ! आज तो उनका निराला ही रूप देखने को मिला। जवान की नाईं बोल रहे थे। फौज को ऐसा उत्साहित किया कि जवानों में प्राणबल उमड़ पड़ा। अपनी विजय हो गई।"

लोग रास्ते में जाते-जाते इस प्रकार की बातें कर रहे थे और कमरे में बैठे-बैठे जनार्दन स्वामी सुन रहे थे। वे बाहर निकले, लोगों से जानकारी प्राप्त की। उनको आश्चर्य हो रहा था कि मैं तो कमरे में ही बैठा था। यह कैसे हुआ ?

आकर एकनाथजी से पूछा तो एकनाथजी प्रणाम करते हुए विनीत भाव से कहने लगेः

"क्षमा करें गुरुदेव ! आपकी आज्ञा के बिना आपके वस्त्रों का मैंने उपयोग किया। राजा साहब के वहाँ से दूत परवाना लेकर आया था, आप समाधि में थे और....।"

एकनाथजी ने सारी बात बताकर आखिर में फिर से क्षमा माँगते हुए कहाः "स्वामी ! मुझसे कुछ अनुचित हो गया हो तो क्षमा करना नाथ !"

"नहीं बेटा ! तू व्यवहार में दक्ष है। शाबाश ! बहुत अच्छा किया तूने। मैं प्रसन्न हूँ।"

दिन बीतते गये। एकनाथ जी की सेवा जोर पकड़ती गई। वर्ष के आखिरी दिन आये। दीवानजी को राज्य के हिसाब की बहियाँ पेश करनी थी। उसमें कुछ गलती रह गई थी। दीवानजी ने एकनाथ जी से कहाः

"बेटा ! जरा जाँच करना, हिसाब तो ठीक है न !"

"जी गुरुदेव !"

एकनाथजी ने हिसाब देखते-देखते पूरा दिन लगा दिया और तो सब ठीक था लेकिन एक पाई की भूल आ रही थी। कहाँ गड़बड़ थी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। एकनाथजी लगे रहे। शाम ढली। रात्रि का प्रारंभ हुआ। सर्वत्र अंधेरा छा गया। फिर भी खाना पीना भूलकर एकनाथ लगे हैं हिसाब के पीछे। नौकर कब दीया रख गया, कुछ पता नहीं। मध्यरात्रि हुई फिर भी हिसाब पूरा नहीं जमा।

ब्रह्ममुहूर्त हुआ। गुरुदेव जागे। दैनिक नियमानुसार एकनाथ दिखे नहीं। जनार्दन स्वामी ने सोचाः दिन में दसों बार दर्शन करनेवाला एकनाथ कल से दिखता नहीं। क्या बात है ! गुरुजी गये कमरे में तो दीपक जल रहा है। एकनाथ बहियों के ढेर के बीच बैठा है, हिसाब जाँचने में मशगूल होकर। गुरुदेव पधारे फिर भी कुछ पता नहीं। दीवान साहब दीये का प्रकाश रोकते हुए खड़े रह गये। अक्षरों पर अन्धेरा छा गया फिर भी हिसाब में एकाग्र एकनाथ को सब कुछ ज्यों का त्यों दिख रहा था।

इतने में पाई की भूल पकड़ में आ गई। हिसाब सुलझ गया। एकनाथ खुश होकर बोल उठेः

"मिल गई..... मिल गई.....!"

"क्या मिल गई बेटा ?"

अरे ! यह तो गुरुदेव की आवाज ! एकनाथ ने ऊपर देखा तो गुरुदेव स्वयं खड़े हैं।

"गुरुदेव ! आप....?"

"अरे ! मैं तो आधे घण्टे से यहाँ खड़ा हूँ।"

"मुझे पता नहीं चला नाथ ! आपकी दी हुई सेवा में निमग्न था, आपके दर्शन नहीं कर पाया। एक पाई की भूल आ रही थी हिसाब में। अब वह मिल गई।"

"बेटा ! एक पाई की भूल के लिए रात-दिन लगा रहा खाये-पिये बिना ?"

"गुरुदेव ! भूल एक पाई की हो चाहे लाख रुपये की हो। भूल तो भूल ही है। आपने भूल निकालने के लिए कहा था तो मैं भूल को कैसे रहने दूँ ?"

मुनीम बनो तो ऐसे बनो। अपने कर्तव्य में चुस्त। आज का काम कल पर रखा तो कल का काम परसों पर चला जायेगा। एक सप्ताह में तो चढ़े हुए काम का ढेर हो जाएगा। वह काम का बोझ दिमाग में 'टेन्शन' पैदा करेगा।

व्यवहार में दक्ष बनो। इस काम के बाद वह काम करना है, उसके बाद यह। एक बार संकल्प करके आप संकल्प के मुताबिक काम कर लेते हैं तो आपकी योग्यता बढ़ने लगती है। एक बार संकल्प करके उसके मुताबिक आप काम नहीं करते तो मन आलसी और दुर्बल हो जाता है। आप पर हावी हो जाता है और अपनी गुलामी में पीसता रहता है। इस गुलामी से छूटने के लिए पहले सत्संकल्प करो और फिर डटकर उस संकल्प के मुताबिक कार्य पूर्ण करो। दक्षता बढ़ाओ।

एकनाथ जी का जवाब सुनकर गुरुमहाराज का हृदय बरस पड़ा। उसके नयनों से ईश्वरीय कृपा का प्रपात एकनाथ जी के हृदय में हो गया। सदगुरु और सत्शिष्य एकाकार बन गये। सत्शिष्य निहाल हो गया। वे कुछ समय के लिए आनन्दस्वरूप परमात्मा में खो गये, समाधिस्थ हो गये। गुरुदेव भी अधिकारी उर-आँगन में ईश्वरीय अमृत की वर्षा करके मानो आहलादित हो गये। अपना सारा आध्यात्मिक खजाना शिष्य के हृदय में उड़ेलते हुए मधुर वाणी से बोलेः

"एकनाथ ! बेटा ! यह तेरे अकेले के लिए नहीं दिया है। लोग विषय-विकारों में और मनःकल्पित साधनों में समय बरबाद कर रहे हैं। दिल के देवता का पता ही नहीं। अब तू समाज में विचर। लोगों को दिल के देवता की तरफ आकर्षित कर। आध्यात्मिक खजाने का अमृत उनको चखा।"

एकनाथजी तीर्थों में लोगों को आंतर तीर्थ की खबर देते, आत्म-तीर्थ में स्नान करने की विधि का प्रचार करते हुए आखिर पैठण में स्थिर हुए। अपने घर के प्रांगण में ही कथा-सत्संग करना शुरु किया। प्रारंभ में पाँच सात व्यक्ति आये, फिर दस-पन्द्रह, बीस-पच्चीस-पचास-सौ-दौ सौ भक्त सत्संग सुनने आने लगे। घर का प्रांगण छोटा पड़ने लगा। खिले हुए मधुर फूल की सुगन्ध की तरह एकनाथ जी की ख्याति चहुँ ओर फैलने लगी। उनकी कथा में लोग आत्मरस के घूँट भरने लगे। टूणा-टोटका-तावीज करनेवाले पाखण्डी लोगों की ग्राहकी कम होने लगी।

एकनाथ जी आत्मवेत्ता संत थे। आत्मबल बढ़ाने की बात कहते थे। स्वावलंबी और स्वाधीन बनने की बात होने लगी।

जो दूसरों को गुलाम बनाता है वह स्वयं गुलाम बनता है। जो दूसरों को मूर्ख बनाता है वह स्वयं मूर्ख रहता है। जो दूसरों से धोखा करता है वह स्वयं पहले अपने दिल को ही धोखा देता है बाद में ही दूसरों से धोखा कर पाता है।

दूसरों को स्वतन्त्र बनाओ तो आप स्वतंत्र रहोगे। दूसरों को जितने पराधीन बनाओगे उतने ही आप पराधीन बने रहोगे। दूसरों को खीर खांड खिलाओगे तो आपकी भी खीर-खांड बढ़ती रहेगी। यह ईश्वरीय अकाट्य नियम है।

शक्कर खिला शक्कर मिले टक्कर खिला टक्कर मिले।
नेकी का बदला नेक है बदों की बदी देख ले।।

दुष्ट लोग एकनाथ जी का विरोध करने लगे। कुप्रचार करने वालों की संख्या बढ़ गई। अच्छी बात फैलाने में समय, शक्ति चाहिए। गन्दी बात फैलाने में उतनी समय-शक्ति नहीं लगानी पड़ती। निम्न स्तर पर जीने वालों की संख्या सदा अधिक हुआ करती है। ऐसे लोगों की टोली बन गयी। टोली का लक्ष्य रहा कि एकनाथजी का प्रभाव कैसे तोड़ें। फैसला हुआ कि हररोज दो-चार लोग एकनाथ जी के सत्संग में पहुँच जाय और उनकी हिलचाल-चेष्टा का निरीक्षण करें। उनकी कुछ कमजोरी हाथ लग जाय तो उसका कुप्रचार करें।

एकनाथ जी जब सत्संग करते तो प्रारंभ में अपने प्रियतम परमात्म-भाव में गोता, लगाते, सबमें बसे हुए अपने सर्वव्यापक ईश्वर से एकता का स्मरण कर लेते। सब श्रोताओं में बसे हुए ईश्वर का स्मरण करके, सबमें अपने आपका अनुसंधान करके जो स्वागत किया जाता है इससे बढ़कर और कोई स्वागत नहीं होता। 'फलाने मिनिस्टर का स्वागत करता हूँ, फलाने बाबा का स्वागत करता हूँ....' ऐसा कहकर जो मौखिक स्वागत किया जाता है उससे बढ़िया स्वागत यह है कि उनमें छुपे हुए सर्व व्यापार परमात्म चैतन्य को प्रणाम करके एक अद्वैत तत्त्व में गोता लगाकर जाय। यह सबसे बढ़िया स्वागत है।

मैं आपका ऐसा स्वागत हररोज करता हूँ ऐसा मुझे लगता है। एकनाथ जी महाराज भी अपने श्रोताजनों का ऐसा ही स्वागत किया करते थे। सबका ऐसा स्वागत करते थे तो जो चंड लोग थे उनका भी तो स्वागत हो जाता था। संत की नज़रों में वे चंड नहीं थे। संसार के व्यवहारु

लोगों की नज़रों में वे चंड थे, सज्जनों की नज़रों में वे चंड थे। संत की नज़रों में उनमें भी अपना राम छुपा था।

एकनाथ जी महाराज के सत्संग में एक प्रतिभा-सम्पन्न महिला आया करती थी। गौरवर्ण देह, घुंघराले बाल, सफेद साड़ी, रत्नजड़ित गहने, आकर्षक तेजस्वी व्यक्तित्व। वह महिला मानो कोई अतिमानवीय हस्ती थी। सबसे आगे आकर बैठती थी।

कथा-प्रसंग में कोई विशेष महत्त्वपूर्ण बात आती तो एकनाथ जी उस महिला की ओर निहारते हुए बात बताते, गहरी बातों की अमृतधारा बहती। एक सामान्य नियम है कि जो विद्यार्थी ठीक से ध्यानपूर्वक सुनता हो, समझता हो उसकी तरफ अध्यापक भी अधिक ध्यान देता है, उसी को लक्ष्य करके सिखाता है। जो श्रोता एकाग्र होकर सुनता है उसकी ओर वक्ता की दृष्टि बार-बार जाती ही है।

चंड लोगों ने नोट कर लिया कि संत उस महिला की तरफ बार-बार निहारते हैं। वह महिला भी सबसे आगे जाकर बैठती है। दाल में कुछ काला है।

एक दिन कथा सुनकर महिला बाहर निकली तो चंड लोगों ने उसका पीछा किया। ऐसे लोग जैसा गुंडागर्दी का आचरण करते हैं वह सब वे पीछे-पीछे जाते हुए करने लगे। ऐसी-वैसी बातें बकते गये और वह महिला उनकी उपेक्षा करके अपना रास्ता तय करती गई, गोदावरी नदी की ओर आगे बढ़ती गई। चंड सोचने लगे कि नदी के उस पार कोई बंगला-महल होगा वहाँ रहती होगी।

महिला गोदावरी के तीर पहुँची, पानी में उतरी, कमर तक पानी में गई तब भी दुष्टों को कोई अन्दाज नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है। वे तो बक रहे थेः

"वहाँ कहाँ मरने जा रही है ? " एक बोला।

"मेरे घर में ही चली आ...।" दूसरे ने कहा।

"मेरी लुगाई हो जा मैं सुखी कर दूँगा....।" तीसरे ने अपना पापीपना प्रकट किया।

इस प्रकार न जाने क्या-क्या बकते रहे और महिला गहरे पानी में आगे बढ़ती रही। जब गरदन तक पानी आ गया तब ये चांडाल चौकड़ी घबड़ायी। सोचा कि अब वह मरेगी। उसकी आत्महत्या हमारे सिर पर पड़ेगी। इतने में तो वह महिला पानी में अदृश्य हो गई।

अब चंड लोग आपस में लड़ने लगे कि तूने गालियाँ दी, तूने ऐसा-वैसा कहा इसलिए वह मरी। आपस में लड़ाई-टंटा करने लगे तो दूसरे चंड लोग भी आ पहुँचे। किसी ने सलाह दी कि आपस में लड़ोगे तो मारे जाओगे, बेमौत मारे जाओगे। तुम सब मिलकर घोषणा कर दो कि एकनाथ जी महाराज ने माई को कुछ ऐसा-वैसा कह दिया कि माई ने बुरा मानकर गोदावरी नदी में डूबकर आत्महत्या कर ली। अपना काम बन जायगा।

चंड लोगों की मंडली ने ऐसा ही किया। जनता को किसी के बारे कोई अच्छी बात सुनाओगे तो उसे सन्देह होगा कि यह ऐसा होगा कि नहीं परन्तु कोई बुरी बात सुनायी जायगी तो लोग तुरन्त स्वीकार कर लेंगे कि हाँ, यह सच्ची बात है। इन बाबा लोग का क्या भरोसा? समाज में बाबा लोग, संत-महात्मा लोग यदा कदा बदनाम हुआ करते हैं।

भारत के सच्चे संत-महात्मा लोग नहीं होते न, तो संसार में जो कुछ शांति दिखती है, थोड़े बहुत आनन्द की झलक दिखती है वह भी नहीं होती। सचमुच, जो आत्मज्ञानी, ब्रह्मवेत्ता महापुरुष हैं वे हमारे सच्चे माई-बाप हैं। उन्होंने तो हमें जीवनदान दिया। भारत में अगर सच्चे संत न होते तो हमारी अभी तो न जाने कैसी बुरी दशा होतती। स्वामी रामतीर्थ कहते थेः

"अभी भी दुनियाँ में थोड़ी भी रौनकर दिखती है वह भी ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के कारण दिखती है।"

एकनाथजी महाराज के विषय में कुप्रचार किया गया। दूसरे दिन कथा के समय उनका प्राँगण ही नहीं गलियाँ भी लोगों से भर गईं। एकनाथ जी महाराज सत्संग करने व्यासपीठ पर बिराजे। आँख बन्द करके परमात्मा में गोता लगाकर बोलना प्रारंभ करने को ही थे इतने में वह कलवाली महिला आकर अपनी नियत जगह में बैठ गई। चंड़ों की टोली में हिलचाल मच गई। आपस में गुसफुस होने लगीः 'अरे यार ! यही तो थी कल। वह नदी में.... और आज फिर यहीं वापस?' कुछ समझ में नहीं आ रहा था उनकी खोपड़ी को।

एकनाथ जी जब आँखें खोलकर बोलते तो लोग सावधान हो जाते, चुप होकर सुनने लग जाते और आँखें बन्द करते तो श्रोताओं में चंचलता आ जाती। संतश्री ने जान लिया कि आज की भीड़ कुतूहल-प्रिय है सत्संग-प्रिय नही है। चालू कथा में एकनाथ जी महाराज ने सबके दिल में चमकने वाले चैतन्य से तादात्म्य करके सारी हकीकत जान ली। कथा जब पूरी हुई तो वह महिला अदब से नमस्कार करने आयी। तब एकनाथ जी ने कहाः "माताजी....!"

सब लोग चौकन्ने होकर सुनने लगे थे कि क्या बात हो रही है। जब एकनाथजी के मुँह से "माताजी" शब्द निकला तो उन लोगों को दिल में धक्का लग गया कि अरे ! हम जो कुछ सोच रहे थे वह बात नहीं है।

एकनाथ जी कहने लगेः "माता जी ! मैंने ऐसा महसूस किया कि कल आपको अपने स्थान जाते समय रास्ते में बड़ा कष्ट सहना पड़ा ! आपकी बड़ी बेइज्जती हुई ! आपके साथ अन्याय हुआ है ऐसा मुझे लगता है।"

माताजी ने कहाः "महाराज ! हमने आपकी कथा को पचाया है। कोई कितना भी कुछ कहे, दुःखी न होना अपने हाथ की बात है।"

जब तक अपने हस्ताक्षर नहीं होते तब तक मजाक उड़ाने वाले सफल नहीं हो सकते। आप जब अपने भीतर से गिरते हैं तब गिराने वाले सफल होते हैं। यह बिल्कुल सच्ची बात है।

जग में वैरी कोई नहीं जो मनवा शीतल होय।

सुखी-दुःखी होना आपके हाथ की बात है। आप बहुत स्वतन्त्र हैं। भगवान स्वतन्त्र हैं तो भगवान का प्यारा जीव भी स्वतन्त्र हैं, आप जाग्रत जगत देखकर हटा देते हो, स्वप्न देखकर हटा देते हो, सुषुप्ति देखकर हटा देते हो। सुख आता है हट जाता है, दुःख आता है हट जाता है। आप वही के वही द्रष्टा, साक्षी, स्वतन्त्र मौत आई, चली गई। मौत अगर आपको मारती तो हजारों बार मौत हुई। फिर आप अभी यहाँ कैसे होते ? मौत आपकी नहीं होती, शरीर की होती है। मौत आपको छू नहीं सकती, आप ऐसे स्वतन्त्र हो। लेकिन... पता नहीं है, अपनी समझ नहीं है।

वह महिला एकनाथजी महाराज से कहने लगीः

"हर स्थिति में चित्त की समता रखना आपने सिखाया है। लोगों ने अपमान किया तो मैंने मन से सोचा कि अपमान तो देवता है। अपमान अपने को देहासक्ति से छुड़ाकर निजस्वरूप में जगाता है। अपमान होता है देह का। देह नश्वर है और मैं देह नहीं हूँ। तो मेरा क्या बिगड़ा ? अपमान की हवा लगी देह को। मैंने बढ़िया विचार करके इसको काट दिया।"

आपके विचार बढ़िया होंगे तो अपमान को, विघ्नों को, प्रतिकूलताओं को आप साधना बना देंगे। आपके विचार अगर घटिया होंगे तो अपमान-विघ्न-बाधाएँ आप पर प्रभाव डाल देंगे। आप स्वामी बनेंगे तो ये सेवक हो जाएँगे। आप भोले रहेंगे तो ये अपमान, विघ्न-बाधाएँ, प्रतिकूलताएँ आदि आपके स्वामी बन जाएँगे और आपको कुचलेंगे।

आप एकदम भोला मत बनिये। देवाधिदेव भगवान शंकर को 'भोलेनाथ' कहा जाता है। इसका मतलब यह नहीं है कि वे भोले-भाले हैं, बेवकूफ हैं। जो निर्दोष भाव से उनको याद करते हैं उनके आगे वे दयानिधि प्रकट हो जाते हैं। ऐसे वे नाथ हैं। इसीलिए उनका नाम है भोलेनाथ। वे भोले थोड़े ही है ! जब तीसरा नेत्र खोलते हैं तब कामदेव जैसों को भस्म कर देते हैं, त्रिभुवन भुवन भंग कर देते हैं। वे बेचारे थोड़े ही हैं ! दया के पात्र थोड़े ही हैं भोलेनाथ !

भगवान भोले नहीं हैं तो भगवान के सच्चे भक्त भी भोले नहीं रह सकते।

भगत जगत को ठगत है जगत को ठगत न कोई।
एक बार जो भगत ठगे अखण्ड यज्ञ फल होई।।

नारदजी सच्चे भक्त थे। वालिया लुटेरा ने उनको एक बार ठग लिया, उनकी विद्या, उनका ज्ञान, उनकी कृपा आत्मसात कर ली, पचा ली तो वह वाल्मीकि ऋषि बन गया। कबीर जी सच्चे भक्त थे। सलूका मलूका ने सेवा करके उनका आध्यात्मिक खजाना पा लिया, उनको ठग लिया तो सलूका मलूका का बेड़ा पार हो गया। श्रीमद् आद्य शंकराचार्य महान् भक्त थे, वे परमात्म-तत्त्व से रंच मात्र भी विभक्त नहीं थे। जिन्होंने उनको ठग लिया, उनका दिव्य खजाना स्वीकार कर लिया उनका बेड़ा पार हो गया।

सच्चे भक्त, सच्चे संत महापुरुष अपने को ठगवाने के लिए घूमते हैं, अपना मधुर, भव्य, दिव्य खजाना लुटाने के लिए घूमते हैं लेकिन आप लोग बड़े ईमानदार हैं। सोचते हैं कि संतों

का खजाना क्यों लूटें ? नहीं...। नहीं....। आप लोग संतो का भीतरी खजाना लूट लेंगे तो बढ़िया रहेगा।

एकनाथ जी कहते हैं- "भगवती ! मैं अपना रहस्यमंत्री आपके साथ भेजूँ। आपको किनारे तक छोड़ आयेगा।"

"नहीं नहीं, कोई आवश्यकता नहीं महाराज ! जब तक आदमी का अपना मनोबल नहीं होता तब तक पहुँचाने वाले भी कहाँ तक रक्षा करेंगे ?"

कितनी सुन्दर बात है ! आपका मनोबल नहीं है तो रक्षक भी भक्षक बन सकता है। वह शोषण करने लग जाता है। इसलिए आपका दक्ष हो जाओ। छोटी-मोटी घटनाओं से अपने को प्रभावित मत होने दो, भयभीत मत करो। उन बातों से आप उदासीन हो जाओ ताकि मनःशक्ति का विकास हो जाये।

उदासीन का मतलब पलायनवादी नहीं। छोटे-मोटे आकर्षणों से उदासीन होकर मनःशक्ति को, बुद्धिशक्ति को बढ़ाने का मौका लेकर अपने साक्षी स्वरूप ब्रह्म में बैठना इसी का नाम उदासीन होना है।

एकनाथ जी ने कहाः "देवी ! तो ऐसा करें, मैं आपके किनारे आकर रोज आपको कथा सुनाया करूँ ?"

"नहीं महाराज ! "गोदावरी माता की जय....' करके लोग मुझमें गोता मारते हैं और अपने पाप मुझमें छोड़ जाते हैं। मैं लोगों के पापों से बोझिल हो जाती हूँ। फिर महाराज ! मैं नारी का रूप धारण करके आप जैसे आत्मज्ञानी ब्रह्मवेत्ता संत-महात्मा के द्वार पर एक-एक कदम चलकर आती हूँ तो पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं। परमात्म-तत्त्व से छूकर आती हुई आपकी अमृतवाणी मेरे कानों में पड़कर मेरे हृदय का बोझा विच्छिन्न कर देती है। मुझे शीतलता मिलती है, आत्मशांति मिलती है। मुझे देखकर आप अपने ऊँचे अनुभव की बातें भी बताते हैं तो मेरे साथ अन्य लोगों को भी लाभ मिलता है। यहाँ बहुजनहिताय.... बहुजनसुखाय सत्संग हो रहा है और वहाँ मेरे किनारे पर आप संत पुरुष चलकर आवें, मुझ अकेली के लिए कष्ट उठाएँ यह मुझे अच्छा नहीं लगता। कृपा करके आप यहीं सत्संग चालू रखें। मैं आया करूँगी, अपने को पावन किया करूँगी। मुझे कोई कष्ट नहीं। आपका कथा अमृत पीकर अपने को निर्द्वन्द्व तत्त्व में जगाऊँगी।"

चांडाल चौकड़ी के लोग यह सुनकर दंग रह गयेः "अरे ! ये तो साक्षात् गोदावरी मैया ! लोगों के पाप हरकर पावन करने वाली भगवती गोदावरी माता स्वयं पावन होने के लिए एकनाथ जी महाराज की कथा में आती हैं ?.... और हम लोगों ने एकनाथ जी महाराज के लिए क्या-क्या सोचा और किया !

साक्षात् गोदावरी माता भी जिनके दर्शन करने और सत्संग सुनने आती है ऐसे महान् संत पुरुष के सत्संग दूषित भाव से आये, कुभाव से बैठे तो भी हमें गोदावरी माता के दर्शन हो गये।

कुभाव से बैठे तो भी हमें गोदावरी माता के दर्शन हो गये। कुभाव से आने पर भी संत-समागम से इतना फायदा होता तो सुभाव से आने वालों का तो बेड़ा पार हो जाय।"

कभी-कभी ब्रह्मज्ञानी संतों का सत्संग सुनने के लिए कई सूक्ष्म जगत की आत्माएँ भी आती हैं। आकाश में विचरने वाले सिद्ध भी गुप्त रूप से आ जाते हैं और तत्त्ववेत्ता की वाणी सुनकर गुपचुप रवाना हो जाते हैं।

जो कष्ट सहन करता है उसको सिद्धि मिलती है। मैं आपको दो तीन घण्टे बिठा रहा हूँ। लगातार बैठकर, कष्ट सहकर सत्संग सुनते-सुनते आपकी भी सिद्धि हो रही है। पाप कट रहे हैं। पुण्य बढ़ रहे हैं।

अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः।

अब शब्द आता है **गतव्यथः।** व्यथा से रहित।

एक सेठ के चार बेटे थे। तीन तो सुबह जल्दी उठ जाते थे, चौथा आलसी-प्रमादी था। सूर्योदय होने के बाद देरी से उठता था। सेठ व्यथित हो जाते थे। आप बेटे को जल्दी उठाओ, नहीं उठे तो अपने हृदय को व्यथित मत करो। 'बेटा नहीं मानता... बेटी नहीं मानती.... बहू नहीं मानती.... यह नहीं होता.... वह नहीं होता...।' ऐसा करके छोटी-छोटी बातों में आप अपने हृदय को व्यथित कर देते हैं, व्यग्र कर देते हैं, शोकाकुल कर देते। व्यथित होना यह दक्षता से गिरना है। हृदय को व्यथित करने से अपनी ही शक्ति क्षीण होने लगती है। आप संतानों को अनुशासन में चलाओ। इसमें शास्त्र संमत है किन्तु आप व्यथित होकर अपने बच्चों, नौकरों को सुधारने लगोगे तो वे सुधरेंगे नहीं, बगावत नहीं करेंगे।

बाबाजी सेठजी के साथ कार में जा रहे थे। ड्राईवर ने एकदम से मोड़ ले लिया। सेठ जी ने उसे डाँटाः

"बदतमीज ! यह क्या कर रहा है ? अभी गाड़ी को ठोकर लग जाती ! हार्न बजाना चाहिए था !... " इत्यादि। आग-बबूला होकर सेठ जी बरस पड़े।

बाबाजी ने धीरे से कहाः "सेठजी ! यह क्या कर रहे हो ?"

"मैं इस कम्बख्त को सुधार रहा हूँ।"

"आप अपना दिल बिगाड़कर उसे सुधार रहे हो तो वह कैसे सुधरेगा ?"

आप अपना दिल मत बिगाड़ो। अपने को व्यथित करके किसी को सुधारेगा तो वह नहीं सुधरेगा।

पहले अपना दिल पावन कर लो, प्यार से भर लो, कल्याण से भर लो। दिल को व्यथा में मत भरो। प्यार से लोगों को सुधरने का मौका दो और परिणाम रूप फल की आशा मत करो। फिर देखो, ईश्वर क्या नहीं करवाता।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

12-13 साल का एक लड़का था रोहित। एक बार अपने बाप से साथ किसी ब्रह्मज्ञानी संत के दर्शन करने गया। सत्संग सुना तो उसे मजा आ गया। फिर संत श्री से मंत्रदीक्षा ली और घर आकर उत्साह पूर्वक गुरुजी के बताये अनुसार साधना करने लगा। क्रमशः उसका प्राणोत्थान हुआ, कुण्डलिनी शक्ति जागृत हुई। कभी गुरुदेव के श्रीरचरणों में पहुँच जाता, साधना में नये संकेत, नया प्रसाद पाकर वापस लौट आता। महीने बीते, साल बीतने लगे।

रोहित जब 18-19 साल का हुआ तो उसने गुरु जी के पास आना बंद कर दिया। महीने बीत गये। एक बार रोहित के गाँव के कुछ लोग उन महात्मा जी के दर्शनार्थ गये तो उन्होंने पूछाः

"तुम्हारे गाँव का वह रोहित आज कल नहीं दिखता, क्या बात है ?"

"गुरुजी महाराज ! रोहित की तो मंगनी हो गई है। अब उसकी शादी होने वाली है।" लोगों ने बताया।

"रोहित शादी करे, कोई बात नहीं। शादी करने का इन्कार नहीं है, बरबादी करने का जरूर इन्कार है। तुम लोग अपने गाँव जाओ तब रोहित से कहनाः गुरु महाराज ने याद किया है।"

"जी स्वामी जी।"

लोग शाम को गाँव पहुँचे। रोहित की तलाश की तो पता चला, रोहित की शादी हो रही है। पहुँचे लग्न-मण्डप में। सोचा कि गुरु महाराज का सन्देशा तो दे दें ! रोहित ने कन्या के साथ दो फेरे फिर लिये थे, तीसरा फेरा फिर रहा था और चार बाकी थे। तब गाँव वालों ने बताया कि हम गुरु महाराज के वहाँ गये थे। उन्होंने तेरे को याद किया है।

रोहित ने क्रिया-काण्ड करानेवाले गोर महाराज को कहाः

"पुरोहित जी ! रुक जाओ। शादी के फेरे तो मैं बाद में फिर लूँगा। पहले मेरे गुरुदेव का पैगाम लाने वालों की बात सुन लूँ।" गाँव वालों की ओर मुड़कर पूछाः

"आप लोग गुरु महाराज के वहाँ गये थे? गुरुदेव क्या बोले ?"

"गुरुदेव बोले कि शादी तो भले करना, मैं मना नहीं करता, पर आना क्यों बन्द कर दिया बेटे ? और गुरुदेव ने कहा है कि रोहित को बोलना, गुरुजी तेरे को याद कर रहे हैं। रोहित अगर मेरा शिष्य होगा तो वह समझ जायेगा।"

रोहित का हृदय गदगद हो गया। जिनके दिल में परमात्मा प्रकट हुआ है, जिनके दिल में अनन्त अखण्ड ब्रह्माण्ड-नायक सच्चिदानन्दघन चैतन्य परमात्मा हिलोरें ले रहा है, लोग जिनको याद करके पावन हो रहे हैं ऐसे मेरे गुरुदेव ने मुझे याद किया !!

रोहित शादी छोड़कर भागा। पुरोहित से कहता गयाः "मैं बाकी के फेरे बाद में फिरूँगा। शादी Cancel नहीं करता, अभी Postpone करता हूँ। मेर गुरुदेव का सन्देशा आया है, मैं रुक नहीं सकता।"

रोहित तत्काल गुरुदेव के गाँव जाने के लिए रवाना हो गया। शाम ढली, रात्रि हुई। रोहित चला रहा, भागता रहा। मध्यरात्रि होने को आई। गुरुदेव का गाँव काफी दूर था। रात्रि बिताने के लिए, थोड़ा विश्राम लेने के लिए रोहित को किसी गाँव की धर्मशाला में ठहरना पड़ा।

उसी धर्मशाला में कोई वेश्या ठहरी थी। रात्रि में बाथरूम जाने के लिए रोहित उठा तो वेश्या के रूप-लावण्य पर दृष्टि पड़ गई। परफ्यूम, सेन्ट, आदि की मादक सुगन्धी फैल रही थी।

इत्र, सेन्ट, परफ्यूम आदि कामुक उत्तेजना पैदा करते हैं। जो लोग इत्र आदि लगाकर पूजा में बैठते हैं, ध्यान-भजन करते हैं अथवा इत्र आदि लगाकर बारात में जाते हैं वे लोग अपने आपसे दुश्मनी करते हैं। डॉ. डायमंड कहते हैं कि इन चीजों से जीवन-शक्ति का ह्रास होता है। पाश्चात्य देशों में खोजबीन की जा रही है कि कौन से रसायनों से कैसे-कैसे बनाये हुए परफ्यूम्स से पुरुष की कामोत्तेजना उकसायी जा सकती है, कौन सा सेन्ट पुरुष को स्त्री के प्रति अधिक आकर्षित करता है। संक्षेप में, किस प्रकार जीवन की ऊर्जा का अधिक सत्यानाश हो यह खोजा जा रहा है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहाः

पुण्यो गन्धः पृथ्वियां च....।

'पृथ्वी में पवित्र गन्ध मैं हूँ...।' **(गीताः7.9)**

सुगन्धी मैं हूँ - ऐसा श्रीकृष्ण ने नहीं कहा। जिस गन्ध से भगवदभाव पैदा हो वह गन्ध पुण्यशाली है। जिस गन्ध से कामोत्तेजना पैदा हो वह गन्ध आन्तर यात्रा में सहायक नहीं है।

भक्त का रास्ता और भोगी का रास्ता अलग है। भक्त भगवान को भोग लगाकर, पदार्थ को पावन बनाकर उसका यथोचित उपयोग करता है जबकि भोगी के क्रिया-कलापों में वासना की दुर्गन्ध मिली रहती है। वे लोग रामजी को भोग नहीं लगाते, श्रीकृष्ण को भोग नहीं लगाते, शिवजी को भोग नहीं लगाते, दुर्गा, अम्बा या काली को भोग नहीं लगाते तो घर में कुत्तों और बिल्लियों को भोग लगाकर सुख चाहते हैं। विदेशों में सुबह-सुबह उठकर कुत्ते और बिल्ली की चाकरी करते हैं, उन्हें खिलाते-पिलाते हैं। इससे तो जो रामजी को, कृष्णचन्द्र को भोग लगाकर मक्खन-मिसरी खाते हैं उन भारतवासियों को मेरा धन्यवाद है।

बच्चों को मक्खन-मिसरी, केला आदि खिलाया करो। आधुनिकता की अन्धी दौड़ में लगे हुए नादान लोग शक्ति के लिए अण्डों की हिमायत करते हैं। अण्डों की मुकाबला कर सके ऐसा एक फल केला है। अण्डे में 40 से 47 कैलोरी होती है जबकि केले में 60 कैलोरी है। अण्डे से जीवन की ऊर्जा उत्तेजित होकर बाहर की ओर धक्का लगाती है, स्वप्नदोष आदि की बीमारी हो जाती है जबकि केला स्वप्नदोष की बीमारी को रोकता है। 200 अण्डे खाने से जितना विटामिन सी मिलता है उतना 100 ग्राम संतरे के रस से अथवा एक आँवले से मिलता है।

आहार-विहार में भी दक्ष होना चाहिए। बीमारी को आमंत्रित मत करो। हिम्मत रखो। मंत्रजाप में विश्वास रखो। विषय-विकार की कन्दराओं से बचो।

रोहित की दृष्टि उस वेश्या पर पड़ गई। एक बार कोई बुरी नियत से व्यक्ति दिखे तो काम-विकार जोर पकड़ लेता है। अपने कमरे में लौटा और सोने की कोशिश की लेकिन रोहित का मन नहीं मान रहा है। बिस्तर में करवटें लेने लगा। वेश्या के दीदार ने इत्र आदि की सुगन्धी ने रोहित के चित्त में कामुक माहौल पैदा कर दिया था। जवानी थी, वेश्या का रूप दिख गया था, रात्रि का समय था, एकान्त-सा वातावरण।

रोहित बिस्तर से उठा। बाहर निकला। वेश्या के कमरे की ओर जाने लगा। देखा तो वेश्या के द्वार पर कोई चौकीदार खड़ा है हाथ में भाला लिये। बड़ी बड़ी मूँछें.... भरावदार सीना.... लाल-लाल आँखें.... छः फीट का पहलवान। रोहित की ओर ऐसे घूरने लगा मानो अभी उसका कलेवा कर देगा।

रोहित वापस बिस्तर में आकर लेट गया लेकिन आँखों में नींद कहाँ ? दिमाग में विकार का कीड़ा प्रविष्ट हो गया था, कुरेद रहा था दिल-दिमाग को। वह कुछ देर बाद फिर उठा। सोचा, वह सिपाही सो गया होगा अब। वेश्या के कमरे की ओर गया तो वह डरावना चेहरा। सिपाही हाथ में भाला लिये खड़ा है। मन मसोसकर युवान वापस लौट आया।

इस प्रकार वह चार बार गया और ऐसे ही वापस लौट आया। सोचता था कि सुख लेने जा रहा हूँ लेकिन उस सुख के पीछे कितने-कितने दोष, शक्तिहीनता, पश्चाताप और विनाश छुपे थे, वह क्या जाने ?

सुबह हो गई। रोहित का काम-विकार ठण्डा हो गया।

सूर्यनारायण के उदय होते ही वातावरण में कुछ सात्त्विकता आ जाती है। इसीलिए मरीज लोग भी सुबह के समय प्रसन्न मिलते हैं। प्रभात का समय बहुत सुहावना होता है। बुखार भी एक-दो डिग्री कम हो जाता है। प्रातःकाल में मानो धरती पर आरोग्य बरसता है। इसलिए प्रातःकाल में लम्बे-लम्बे गहरे श्वास लेने चाहिए, प्राणायाम करना चाहिए। खुली हवा में टहलना चाहिए।

मंगल प्रभात में रोहित की बुद्धि थोड़ी शुद्ध हुई। गुरु महाराज का स्मरण किया और पुनः चल पड़ा श्रीचरणों में पहुँचने के लिए। चलते-चलते दोपहर के बाद गुरु के द्वार जा पहुँचा। गिर पड़ा गुरुदेव के चरणों में।

"गुरुदेव ! कल मैंने सुना कि गुरुदेव मुझे याद कर रहे हैं। शादी के फेरे फिर रहा था वह छोड़कर आपका स्मरण करते हुए भागता-भागता आया हूँ।"

"तू चार फेरे छोड़कर भागता आया है तो मुझे भी रात को समाधि छोड़कर चार-चार बार हाथ में भाला लेकर आना पड़ा।"

एक होती है दीक्षा दूसरी होती है शिक्षा। शिक्षा तुम्हारा ऐहिक जगत का ज्ञान बढ़ाती है। शिक्षा के साथ अगर दीक्षा नहीं है तो आपको गिरने की जगह से बचने का मौका नहीं मिलता।

किसी के जीवन में केवल दीक्षा का प्रभाव है, शिक्षा नहीं है तब भी ऐसे लोग बढ़िया जीवन जी लेते हैं और दूसरों को भी मार्गदर्शन दे सकते हैं।

रामकृष्ण परमहंस और कबीर जी कौन-सी स्कूल कॉलेज में पढ़न गये थे ? नानक कौन-सी युनिवर्सिटी में शिक्षा लेने गये थे ? उन महापुरुषों में दीक्षा का प्रभाव था। इससे वे लोग अपने और दूसरों के लिए रास्ता शुद्ध करके गये।

जिनके जीवन में दीक्षा नहीं है, केवल शिक्षा है वे लोग शिक्षा के अभिमान से, शिक्षा के बल से दूसरों का शोषण करते हैं। वे हैं लोग मानव-संहार क लिए बम बनाते हैं। बम कोई दीक्षित व्यक्तियों ने नहीं बनाये। जिन्होंने बम बनाये वे लोग केवल शिक्षित थे, दीक्षा से रहित। उन शिक्षित व्यक्तियों के पास अगर दीक्षा होती तो वे ऐसा कुछ बनाते कि उनको परमात्मा की मुलाकात हो जाती। हृदय में ब्रह्म-साक्षात्कार लहराने लग जाता।

बम बनाने वाले लोगों को शिक्षा से पहले अगर भारतीय योग और वेदान्त की दीक्षा मिल जाती तो यह युग अभी विनाश के द्वार पर नहीं पहुँचता, अपितु अविनाशी परमात्मा के चरणों में पहुँचा हुआ मिलता।

दीक्षा का मतलब है ठीक दिशा। आत्मा और परमात्मा की दिशा का सही पता चले तो मानवजन्म का लक्ष्य सिद्ध हो जाय। अन्यथा, आदमी उलझ जाता है।

शिक्षा से आदमी अपने व्यक्तित्व का शृंगार करता है और दूसरों का शोषण करने लग जाता है। ऐसी शिक्षा में तो अनपढ़ अच्छा। कबीर जी ने कहाः

भलो भयो गँवार जाहि न ब्यापी जगकी माया।

ऐसे शिक्षित से तो अशिक्षित अच्छा जो धोखाधड़ी तो नहीं करेगा। दीक्षा विहीन शिक्षित लोग भोले-भाले लोगों के आगे 'इन्कलाब जिन्दाबाद.... इस्लाम खतरे में....।' ऐसे नारों से काम निकलवाते हैं, अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं, अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेते हैं।

साम्यवादी (Commuist) लोग क्या करते हैं पता है ? वे लोग आपसे कहेंगेः "हस सबको एक समान करना चाहते हैं। अतः जिसके पास दो मकान हो वह एक मकान रखे और दूसरा जिसके पास नहीं है उसको दे दे। जिसके पास दो गाड़ी हो वह एक रखे और दूसरी दे दे। यह हमारा सिद्धान्त है। ऐसा कायदा बनाओ।"

अच्छा तो, जिसके पास दो भैंस है वह.....

तो वह चिल्ला उठेगाः "दो भैंस तो हमारे पास भी है। भैंस दूसरे को देने का कायदा नहीं बनाओ।"

यह समानता कैसे हुई ? यह तो सर्वनाश हुआ। प्रकृति में विषमता से बनी ही रहेगी। जैसी जिसकी योग्यता ऐसा प्रकृति का चढ़ना-उतरना होता रहेगा। प्रकृति का यह स्वभाव है।

तुम्हारा शरीर में भी एक जैसा नहीं रहता तो समाज एक जैसा कैसे रहेगा ? शरीर में तुम्हारा पैर कहाँ सिर कहाँ ? सबकी विषमता मिलाकर भी तुम एक हो। इसी प्रकार समाज के सब अंग अलग-अलग तो रहेंगे ही। सबको हित कैसे हो और सदा होता रहे यह लक्ष्य होना चाहिए।

साहिब को जो तनख्वाह मिलेगी वही चपरासी को भी मिलना चाहिए ये केवल बहकाने की बाते हैं। 'सब समान.... सब समान....' की साम्यवादी बातें कृष्णजी के ज्ञान से विपरीत हैं। श्री कृष्ण का ज्ञान बाहर की समानता पर जोर नहीं देता। बाहर की विषमता होते हुए भी भीतर जो राम तत्त्व है उसको जान ले तो सबका उद्धार होगा। बाहर की समानता का ढिंढोरा पीटते रहेंगे, अहंकार की सजावट करते रहेंगे तो अपना और दूसरों का शोषण होता रहेगा। अतः आप व्यवहार में कुशल रहो, दक्ष रहो। धोखाधड़ी करना कुशल नहीं। आत्मज्ञान पाने के लिए व्यवहार करना यह कुशलता है।

अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः।

अपने चित्त को व्यथित मत करो, चाहे कैसी भी परिस्थिति आ जाय।

इस्लाम धर्म के एक प्रसिद्ध फकीर शाह हाफिस ने कहाः

"ऐ इन्सान ! तू हाजिर मंदिर तोड़ दे, हजार, मस्जिद तोड़ दे लेकिन एक जिन्दे दिल को मत सताना क्योंकि वह जिन्दे दिल में खुदा रहता है। उस खुदा का ख्याल करना।"

बाइबिल में कहा हैः "अगर तुम शातिं चाहते हो तो मेरी शरण आ जाओ।"

ये बाइबिल के वचन मूलतः आये कहाँ से? भगवद् गीता से। गीता में श्रीकृष्ण ने कहाः

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्मामि मा शुचः।।

'सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत।'

(गीताः 18.66)

ऐसा गीता ज्ञान है तुम्हारे पास, सत्संग, ध्यान और कीर्तन की सुविधाएँ हैं तुम्हारे पास, फिर भी तुम साधना की यात्रा न करो तो कैसे काम चलेगा ? आध्यात्मिक यात्रा करो और ऐसी करो कि कई जन्मों का अंत हो जाय। यह मनुष्य-जन्म आखिरी भी हो सकता है और जन्मों की लम्बी परंपरा का आदि भी हो सकता है और जन्मों की लम्बी परंपरा का आदि भी हो सकता है। अगर दुष्ट, निकृष्ट कृत्य करो तो कई जन्मों की नालियों में ले जाने वाला यह आदि जन्म बन जाय। बढ़िया सत्कृत्य करो, करने और पाने की वासना मिट जाय तो हजारो जन्मों को काटकर मुक्ति दिलाने वाला आखिरी जन्म बन जाय। इस मानव जन्म में आदि भी छुपा है, अंत भी छुपा

है। अतः खूब सावधानी से आचरण करो। हृदय में बसे हुए परमात्मा को जल्दी से जल्दी प्रकट होने दो।

जिज्ञासु कैसा होना चाहिए ? **अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः।** अपेक्षारहित, पवित्र, व्यवहार कुशल, उदासीन और व्यथारहित। तुच्छ अपेक्षाएँ बेचारे आदमी को तुच्छ बना देती हैं। हल्की अपेक्षाएँ छोड़ देने पर वह सम्राटों का सम्राट हो जाता है। सब अपेक्षाएँ नहीं छूटती तो हलकी अपेक्षाएँ छोड़ दो। आगे चलकर ये अपेक्षाएँ भी बनी रहेगी तब तुम्हारा ब्रह्मत्व प्रकट हो जाएगा।

व्यवहार में दक्ष होना चाहिए। दक्ष का मतलब यह नहीं कि किसी का हक छीनना। जिस कार्य से मोक्ष-लाभ मिले वह कार्य करो। जिस कर्म से अंतःकरण शुद्ध बने, अधिकाधिक पवित्र बने, जो कर्म शास्त्र-संमत हो, महापुरुषों के द्वारा अनुमोदित हो, अपने हृदय को आनन्दित करता हो वह कर्म पुण्य-कर्म है। ऐसा कर्म अवश्य करना चाहिए।

जो कार्य करने से हृदय में ग्लानि होती हो, जो शास्त्र-संमत न हो, महापुरुषों के द्वारा अनुमोदित न हो वह कार्य करने वाला अदक्ष है।

धार्मिक लोग आजकल लाचार जीवन गुजारते हुए, पराश्रित जीवन गुजारते हुए दिखते हैं। किसी को लगेगा कि, 'अरे ! इन बेचारों ने धर्म को माना तो यह हालत हो गई।' मगर वास्तव में धर्म को उन लोगों ने जाना ही नहीं, धर्म की परिभाषा समझे ही नहीं। धार्मिक जगत ने धर्म के दर्शनशास्त्र का अनादर किया है तो धर्म ने भी उनका अनादर कर दिया। टिलेटपके तानकर कहलाने भर के भगत बन जाने से काम नहीं चलता। अपेक्षावान होकर रोने-गिड़गिड़ाने से काम नहीं चलता।

एक ऐसा भगतड़ा था, धार्मिक था। शरीर से हट्टा-कट्टा था। कभी शिवजी की पूजा करता तो कभी राम जी की, कभी कन्हैया को रिझाता तो कभी जगदम्बा को, कभी गायत्री की उपासना करता है तो कभी दुर्गा की। कभी-कभी हनुमानजी को भी रिझाने का लगता था ताकि और कोई देवी-देवता संकट के समय में न आवें भी पवनसुत हनुमानजी जम्प मारकर आ सकते हैं। अपने पूजा के कमरे में वह भगत कई देवी-देवता के चित्र रखता था, मानो कोई छोटी-मोटी प्रदर्शनी हो।

शरीर से पहलवान जैसा वह भगतड़ा बैलगाड़ी चलाने का धंधा करता था। एक बार उसकी बैलगाड़ी फँस गई। वह नर्वस हो गया। आकाश की ओर निहार कर गिड़गिड़ाने लगाः "हे मेरे रामजी, आप दया करो। हे ठाकुरजी, आप आओ। हे कन्हैया, तू सहायता कर। हे भोलेनाथ, आप पधारो। मेरी बैलगाड़ी फँस गई है, आप निकाल दो।"

भगतड़ा एक के बाद एक करके तमाम देवी-देवताओं को बुला चुका। कोई आया नहीं। शाम ढलने लगी। सूर्य डूबने की तैयारी में था। गाँव काफी दूर था। गाड़ी में माल भरा था। लुटेरों

का भय था। वह रोया। आखिर हनुमानजी को याद किया, गिड़गिड़ाया। पवनसुत जी भी नहीं आये तो वह रोते-रोते सुन्न हो गया, अनजाने में शांत हो गया। चित्त शांत हुआ तो जिससे हनुमान जी हनुमान जी हैं, जिससे गुरु गुरु हैं, शिष्य शिष्य है, जिससे सृष्टि सृष्टि है उस चैतन्य तत्त्व के साथ एकता हो गई क्षणभर। हनुमान जी के दिल में स्फुरित हुआ कि मेरा भक्त विह्वल है, मुझे याद कर रहा है।

कहानी कहती है कि वहाँ हनुमानजी प्रकट हो गये। भगत से बोलेः

"अरे ! रो क्यो रहा है ? क्या बात है ?"

"मेरी गाड़ी फँस गई है कीचड़ में। अब आपके सिवाय मेरा कोई सहारा नहीं। कृपा करके आप मेरी बैलगाड़ी निकलवा दो।"

हनुमानजी ने कहाः "अरे पराश्रित प्राणी ! यही अर्थ करता है तू भगवान को रिझाने का ? ऐसे छोटे-छोटे कार्य करवाने के लिए भगवान की पूजा करता था ? ऐसा ताजा तगड़ा है.... तेरे हृदय में भगवान का अथाह बल छुपा है उस पर तूने भरोसा छोड़ दिया ? उतर नीचे। साँस फुला। जोर लगा। पहिये को धक्का मार और बैल को चला। गाड़ी निकल जायेगी। गाड़ी पर बैठा बैठा रो रहा है कायर ! बोल, नीचे उचरता है कि नहीं ? जोर लगाता है कि गदा मारूँ ?"

आदमी अपने शौक से दौड़ता है लेकिन कोई डण्डा लेकर मारने के लिए पीछे पड़ता है तो भागने की अजीब शक्ति अपने आप आ जाती है। छुपी हुई, दबी हुई शांति प्रकट हो जाती है।

भगतड़े में आ गया जोर। नीचे उतरा, पहिये को धक्का लगाया, बैल को प्रोत्साहित किया। गाड़ी निकल गई।

"हे प्रभु ! आपकी दया गई।"

"हमारी दया नहीं, तुमने अभी अपनी शक्ति का उपयोग किया।"

हम लोग दर्शन शास्त्र का अनादर करते हैं, उससे अनभिज्ञ रहते हैं और तथाकथित भगतड़े हो जाते हैं तो हिन्दू धर्म की मजाक उड़ती है। हमारा हिन्दू धर्म, सनातन धर्म अपने पूर्व गौरव को खो बैठा है, हम लोगों के कारण। धर्म के नाम पर हम लोग पलायनवादी बन जाते हैं। व्यवहार में अकुशल और राग-द्वेष के गुलाम बनने से हमारी शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं।

परब्रह्म परमात्मा का एक नाम 'उदासीन' भी है। उसमें तुम्हारी वृत्ति को आसीन करो।

जब काम-विकार सताने लगे, भोग की अपेक्षा उठने लगे तब भगवान शिव का चिन्तन करो। त्रिनेत्रधारी भगवान चंद्रशेखर ने तीसरा नेत्र खोलते ही काम को भस्मीभूत कर दिया था। अपने हृदय में भगवान शिवजी विराजमान हैं।

चित्त में काम का विचार उठते ही हम उसे पोषण देने लगते हैं तो हम गिर रहे हैं। इस वक्त राम जी का या शिवजी का स्मरण करेंगे तो काम को पुष्टि नहीं मिलेगी। फिर वह इतना धोखा नहीं देगा जितना दे रहा है। आप बच जाएँगे। आपकी अपेक्षाएँ कम हो जाएँगी। आपका शरीर सुदृढ़ होने लगेगा।

पान खाने की इच्छा है लेकिन इच्छा को आप सहयोग न दो तो इच्छा थोड़े ही आपको गुलाम बना सकेगी ! इच्छा को सहयोग देते हो, उसे तृप्त करने के लिए चेष्टा करने लगते हो तभी आपकी इच्छा आप पर चढ़ बैठती है, हावी हो जाती है, गुलाम बना देती है। जो नहीं चाहते वह काम करना पड़ता है। इसलिए सावधान रहो, सजग रहो, दक्ष बनो। आप महान् बनने के लिए आये इस संसार में। अपेक्षाओं से अपने आपको क्षीण करते रहोगे तो कैसे काम चलेगा ?

हम लोग जो चाहते हैं वह सब होता नहीं। जो होता है वह सब भाता नहीं। जो भाता है वह टिकता नहीं। यह सबके जीवन की मीमांसा है।

तो क्या करें ?

अपेक्षाओं को छोड़ो। जिसकी सत्ता से चाह पैदा होती है, जिसकी सत्ता से भाता है उसको निहार लो। बेड़ा पार हो जायेगा। उसको निहारने के लिए जरा दक्ष होना पड़ेगा। फिसलाहट से अपने को बचाना पड़ेगा।

अन्तःकरण की एक धारा उठी, दूसरी उठने को है। इन दोनों के बीच की जो अवस्था है उसको जरा देखो, आपका बल बढ़ जायेगा। आपकी बुद्धि का विकास हो जायेगा। प्रज्ञाशक्ति का प्रागट्य हो जाएगा। शरीर तन्दुरुस्त रहेगा।

आप सुबह-दोपहर शाम को दो-दो पाँच-पाँच मिनट निकालकर दक्ष होने का अभ्यास करो। जो वृक्ष - पाषाण - पहाड़, नदियाँ - सरोवर - सागर, सारी पृथ्वी, सूर्य - चन्द्र-तारे, ग्रह - नक्षत्र, कई आकाशगंगाएँ, अनन्त अनन्त ब्रह्माण्ड अपने भीतर सह रहा है, सृष्टि की उत्पत्ति-स्थिति-लय को सह रहा है, सारे संसार को सह रहा है फिर भी एकरस है ऐसा अंतर्यामी परमात्मा मेरा आत्मा है। इतना ब्रह्माण्डभर का बोझ सह रहा है फिर भी खफा नहीं होता तो मैं चार दीवार के घर से, एक परिवार के बोझ से खफा बनूँ ? वह एकरस परमात्मा सदा मेरे साथ है तो मैं परेशान क्यों होऊँ ?

'मुझमें ईश्वर का अथाह बल है.... मुझमें परमात्मा की असीम शक्ति है। मेरा आत्मा अमर है। ॐ.... नारायण...... नारायण.... नारायण....' करके दक्ष बन जाओ। आपका व्यवहार भी बढ़िया चलेगा और बन्दगी भी होती रहेगी।

दो चार घण्टे काम किया फिर पाँच दस मिनट भीतर गोता लगाने के लिए निकाला करो। चिन्तन करो, विचार करो। कार्य हुआ तो हाथों से हुआ, पैरों से हुआ, शरीर से हुआ। इन उपकरणों से अपनी वृत्ति जुड़ी। यह वृत्ति जहाँ से आती है वह जगन्नियंता मेरा आत्मा आनन्द स्वरूप है, अमर है। इस प्रकार अगर होते जाओगे।

भागवत में एक प्रसंग आता है। हिरण्यकशिपु प्रह्लाद से कहता हैः

"मैं इतना शक्तिशाली राजा हूँ, समर्थ शासक हूँ, मेरे नाम से लोग काँपते हैं और तुझे मेरा भय नहीं लगता ? तू क्या समझता है ?"

प्रह्लाद हँसाः "पिताजी ! मुझमें, आप में आप जैसे कई राजाओं में जो भी शक्ति है वह तो मेरे परमात्मा की शक्ति है। सब वहीं से शक्ति ले आते हैं और बोलते हैं कि हमारी शक्ति.... हमारी शक्ति। सब शक्ति उसी परमात्मा की है, आप जानते नहीं।"

आप लोग भी जब किसी शक्तिशाली की शक्ति देखो, सामर्थ्यवान का सामर्थ्य देखो, बलवान का बल देखो, सौन्दर्यवान का सौन्दर्य देखो तब स्मरण करो कि सब मेरे प्रभु का है। आप दक्ष हो जाओगे।

जब किसी मिनिस्टर को देखो, प्राइम मिनिस्टर को देखो या किसी दरिद्र को देखो तब सोचोः 'ये सब मेरे प्रभु के नाटक के दृश्य हैं। उसी नटराज की ये सब लीलाएँ हैं। वाह मेरे प्रभु ! अजीब है तेरी लीला !' आप दक्ष हो जाओगे।

ऊँचा आसन देखकर उसकी अपेक्षा नहीं करेंगे और छोटे की घृणा नहीं करेंगे, आप अपने आपमें आ जाएँगे तो हो गये दक्ष।

हम लोग क्या करते हैं ? अपने से छोटे लोगों को देखकर हमें अहंकार होता है कि हम कुछ हैं। अपने से बड़ों को देखते हैं तो सिकुड़ जाते हैं, दिल में व्यथा होती है। अपने हृदय की स्थिति बदलती रहती है। एकरसता नहीं रहती, दक्षता नहीं आती।

अपनी दिनचर्या को जरा गौर से देखोगे तो अनुभव हो जाएगा कि अपना चित्त दिनभर में कितने रंग बदलता है ! चित्त के इतने सारे रंग बदले फिर भी तुम्हारे आत्मा का कुछ बिगड़ता नहीं यह अनुभव करके जान लो। चित्त के बदलते हुए रंग को जो देखता है उसका स्मरण कर लो तो आपके चित्त का रंग बदलना शिथिल हो जाएगा। चित्त में समता आने लगेगी।

बिल्लोरी काँच को सूर्य के किरणों के आगे धरते हैं तो सूर्य प्रकाश के किरण एकत्रित हो जाते हैं, एक बिन्दू पर केन्द्रित होकर आग पैदा कर सकते हैं। सूर्य का प्रभाव हो जाता। अगर उस काँच को हिलाते रहेंगे तो किरण केन्द्रित होकर ऐसा प्रभाव पैदा नहीं कर पायेंगे।

ऐसे ही अपना चित्त अगर हिलता रहा तो सूर्यों के भी सूर्य परमात्मा की शक्ति का पूरा प्रादुर्भाव उसमें नहीं हो पाएगा। चित्त स्थिर बनेगा, एकाग्र बनेगा तो परमात्मा की शक्ति प्रकट होगी।

कभी-कभी एकान्त में अकेले बैठो। एकान्त बंद कमरे में अपने को रखो। कुछ दिन का प्रयोग करो। एकाध दिन उबान जैसा लगेगा। ज्ञान-ध्यान-साधना की पुस्तक पढ़ते हुए या कैसेट सुनते हुए लगे रहोगे तो कुछ ही दिनों में अपने जीवन की बड़ी ऊँचाई महसूस करोगे।

दुनियाँ में जो कोई महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने ऊँचे पद पाये हैं, जो पूजे जाते हैं, जिनका नाम अमर हो गया है उन्होंने अपने को कुछ समय के लिए एकान्त में रखा था। कुछ न कुछ साधना करके दक्षता प्राप्त की थी। वे चाहे बुद्ध हों चाहे महावीर, चाहे ईसा हो चाहे शंकराचार्य, चाहे रमण महर्षि हों चाहे रामकृष्ण, चाहे रामतीर्थ हों चाहे विवेकानन्द, गार्गी हो चाहे मदालसा। सभी ने एकान्तवास का सेवन किसी न किसी रूप में किया ही था।

ध्यान-भजन-साधना में दक्षता होनी चाहिए। तबला-ढोलक पीट लिया, मंजीरे कूट लिये, तंबूरा बजा लिया, ऊँची आवाज से चिल्लाये.... बस हो गया भजन। यह बहिरंग भजन है ऐसे ही भजन गाते रहोगे और साधना हो रही है ऐसा मानते रहोगे तो दीनता, हीनता, पराधीनता से पिण्ड नहीं छूटेगा। साधन-भजन ऐसा होना चाहिए कि अपना आत्मबल जाग्रता हो।

भजन गाओ, कीर्तन करो, मना नहीं है लेकिन किस समय करना चाहिए, किस प्रकार करना चाहिए, उससे अन्तर्मुख होने का लाभ कैसे उठाया जा सकता है यह पहले ठीक से समझ लेना चाहिए।

एक भजन गा लिया फिर तुरन्त दूसरा भजन शुरु मत करो। जो भजन गाया उसका सार समझकर थोड़ी देर शांत हो जाओ, डूब जाओ अपने आप में, चित्त की विश्रांति पाओ। फिर दूसरा भजन शुरु करो।

भजन गाने से पहले और भजन गाने के बाद, भजन जहाँ से गाये जाते हैं उस तत्त्व को भी खोजो, खोजकर वहाँ ठहरो। भीतर ही भीतर खुदाई करो। साधना-ध्यान-भजन में इस प्रकार सावधानी से अन्तर्मुखता नहीं लाओगे तो अदक्षता हो जाएगी, अकुशलता हो जाएगी।

परमात्मा ने आपको अदभुत शक्ति दी है, प्रज्ञा दी है। उसको पहचानो और उसका उपयोग करो। बच्चों को भी प्रज्ञा बढ़ाने की तरकीबें सिखाओ। कमर झुकाकर बैठना योग्यताओं के विकास को रोकना है।

ज्ञानमुद्रा में बैठने से एकाग्रता बढ़ती है। सुखासन, पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर दोनों हाथ की पहली उंगली और अंगूठे को मिलाकर घुटनों पर हाथ रखकर सीधा बैठना चाहिए और हररोज इस प्रकार एकाग्रता का अभ्यास करना चाहिए।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आपके पास कल्पवृक्ष है

आपके पास कल्पवृक्ष है। आप जो चाहें उससे पा सकते हैं। उसके सहारे आपका जीवन जहाँ जाना चाहता है, जा सकता है, जहाँ पहुँचना चाहता है, जो बनना चाहता है बन सकता है। ऐसा कल्पवृक्ष हर किसी के पास है।

सुंञा सखणा कोई नहीं सबके भीतर लाल।
मूरख ग्रंथि खोले नहीं करमी भयो कंगाल।।

वह कल्पवृक्ष है तुम्हारा मन। मन से मित्रता कर लो, मन की शक्ति को पहचान लो, मन पर नियंत्रण पा लो तो महाराज ! मन मुक्ति के द्वार पर देखा। वही मन अगर अशुद्ध रहा, अनियंत्रित रहा तो युगों और सदियों तक तुम्हें पराधीन बनाये रखेगा, अपनी गुलामी की जंजीरों

में जकड़े रखेगा, दारूण दुःखों में दफनाता गुलामी की जंजीरों में जकड़े रखेगा, दारूण दुःखों में दफनाता गुलामी की जंजीरों में जकड़े रखेगा, दारूण दुःखों में दफनाता गुलामी की जंजीरों में जकड़े रखेगाष दारूण दुःखों में दफनाता रहेगा, कातिल कष्टों में, संसार के ताप-संताप में पिसता रहेगा।

मनः एव मनुष्यणां कारणं बन्धनमोक्षयोः।

'मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है।'

विश्वरभर में जिन्होंने भी सिद्धि पायी है, किसी भी क्षेत्र में सफलता पायी है, व्यवहार या परमार्थ के उत्तुंग शिखर सर किये हैं उन सबने यह चमत्कारिक मनरूपी कल्पवृक्ष को साधा है, उसकी शक्तियाँ जानी हैं, उन शक्तियों का सदुपयोग किया है, भुक्ति और मुक्ति के भागी बने हैं।

आपके पास भी यही कल्पवृक्ष मौजूद है। अब जरा देखो, सोचो, समझो, निरीक्षण करो कि इस कल्पवृक्ष से आप मीठे फल ले रहे हो कि कातिल काँटों को शिकार बन रहे हो ? उसके पास सब कुछ है। आप संकल्प करो और फल तैयार। अतः ऐसे मनरूपी कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर आप कभी अपने को लघुताग्रंथि में न बाँधो। अपने भाग्य को कभी ठुकराओ नहीं। वास्तव में ये मकान-दुकान, मोटरगाड़ी आदि तुम्हारे नहीं है। ये तो तुम्हारे शरीररूपी साधन के साधन हैं। तुम्हारा तो ऐसा कुछ है जिसकी पूजा सारा विश्व करता है। 'अल्लाह हो अकबर....' तथा 'ॐ नमः शिवाय' करके लोग उसी की बंदगी करते हैं जो तुम्हारा अपना आपा है।

जैसे बिजली के गोले अलग-अलग कंपनी के हो, पंखा और एयर कूलर अलग-अलग कंपनी के हो, फ्रिज और वॉटर-कूलर अलग-अलग कंपनी के हों, टी.वी. और रेडियो अलग-अलग कंपनी के हो, उन सबको कार्य करने के लिए एक बिजली की ही शरण लेनी पड़ती है।

ऐसे ही भोगी या योगी हो, रागी हो या त्यागी हो, गृहस्थ हो या सन्यासी हो, देशी हो या परदेशी हो, अपना हो या पराया हो, सबको शरण तो तुम्हारे राम तत्त्व की ही लेनी पड़ती है। वह सदा तुम्हारे साथ है। इसलिए तुम कभी अपने को दीन-हीन-दुर्बल मत मानो।

अपने को ईश्वर का अमृतपुत्र क्यों नहीं मानते ? कभी भी नकारात्मक विचार को पोषण मत दो। छोटे विचारों को तुम जितना पोसते हो उतना अपने को सताते हो। जितना उच्च विचारों को पोसते ही उतना ही अपने को उन्नत करते हो। बाहर चाहे कैसी भी घटना घट जाय, बाहर से चाहे अपने को हजारों शत्रुओं के बीच घिरे हुए पाओ फिर भी अगर भीतर से तुम हताश नहीं होते हो तो तुम्हारी विजय अवश्य हो जाएगी। इससे विपरीत, बाहर से तुम्हारे पास सब साधन सजे-धजे हों और भीतर से तुम हार गये, भीतर से गिर गये तो बाहर सब साधन होते हुए भी तुम्हें गिरना ही गिरना होगा।

रामचन्द्रजी के जीवन में देखो तो वनवास के समय उनके पास क्या था ? लक्ष्मण भैया और तीर-कमान। रथ भी नहीं था युद्ध के लिए। रावण के पास कितना विशाल राज्य और सेना !

मारीच जैसे रूप बदलने वाले न जाने कितने-कितने लोग थे सेना में ! इधर हनुमानजी तो एक ही थे। फिर भी रामजी ने भीतर से अपने चित्त में लघु विचार को जगह नहीं दी।

रावण बाहर के अहं को पोसता है जबकि रामजी अपने असली 'मैं' में विश्रांति पाते हैं। इतना फर्क है। राम और रावण में भीतर तत्त्व एक ही है। राम और रावण की कहानी से तुम्हें पता है कि अगर देहाध्यास से तुम सुखी होने को गये तो अंततोगत्वा रावण जैसी दशा होगी। हर साल दे दीयासिलाई। लोग रावण के पुतले को जलाकर उसके प्रति धिक्कार प्रकट करते हैं।

रावण साधारण आदमी नहीं था। पुलस्त्य कुल में पैदा हुआ था, ब्राह्मण था। लेकिन देहाध्यास को बढ़ाने के चक्कर में था तो सब कुछ होते हुए भी सर्वनाश हो गया। राम जी के पास तीर-कमान के अलावा भी क्या ? फिर भी जिससे सब कुछ है उस अलख तत्त्व में राम आराम पा रहे हैं इसलिए वे विजेता हो गये।

आप भी अपने पर कृपा करो। अपने पास चाहे कुछ भी न हो फिर भी आप राम में आराम पाने की कला जान लो तो आप ऐसे अदभुत आविष्कार और उन्नति कर सकते हो कि आपकी सलाह लेकर कभी-कभी भगवान भी प्रसन्न हो जाएँगे। कारक पुरुष, अवतारी पुरुष भी आपकी सलाह लेकर आनन्दित हो जाएँगे। वेदव्यासजी को और श्रीकृष्ण को नारदजी ने सलाह दी थी। पूर्व जीवन में नारदजी एक साधारण दासी के पुत्र थे। विद्याहीन और जाति हीन थे। साधन हीन थे। उनकी माँ गरीब दासी थी। किसी सेठ ने उसको संत-साधुजनों के सेवा में रख दिया। इस बहाने छोटे-बेटे को संतपुरुषों के दर्शन हुए। संतों की वाणी कानों में टकराई। संतों की अमीदृष्टि बच्चे पर पड़ी। संतों के हाथ का प्रसाद मिला।

नारद जी कहते हैं कि मैं दासीपुत्र था और संत-समागम से मुझे परमात्म-प्राप्ति की प्यास जगी।

तीन सूत्र याद रखोः

साधु समागम, भगवान में श्रद्धा, भगवन्नाम में श्रद्धा।

छोटे से छोटा आदमी भी इससे महान् हो सकता है।

अगर आपके पास बहुत साधन हों फिर भी आपका जीवन फरियादात्मक है, वृत्ति भोगात्मक है तो उन्नति रूक जाती है। अगर आपकी वृत्ति त्यागात्मक है, योगात्मक है, भीतर से मोक्ष की प्यास है तो आप निरन्तर ऊपर ही ऊपर उठते जाओगे।

हो सकता है आप जरा फिसलो, किसी वातावरण से आपकी यात्रा जरा स्थगित हो जाये लेकिन फिर आप उठ खड़े हो जाओगे सँभल जाओगे, पतन से बच जाओगे, अगर सावधान रहे तो। भागवत में कथा आती हैः

अजामिल इतना क्रूर था कि घर पर संत भोजन करने को पधारे हैं उनको कहता हैः

"महाराज ! मेरी पत्नी भोली है इसलिए आपको भोजन कराया। मैं तो आपका दंड कमंडलू छीन लूँ ऐसा आदमी हूँ। दक्षिणा देने वालों में नहीं पर लेने वालों में से हूँ।"

साधु बोलेः "कुछ भी कर, हम दक्षिणा लिये बिना नहीं जाएँगे।"

"महाराज ! अपना खैर मानो तो निकल जाओ यहाँ से वरना खाया पिया सब वसूल हो जायेगा।

"तुम्हें जो करना है सो कर। हम और कुछ नहीं माँगते। सुन, तेरी पत्नी माँ होने वाली है। तेरे घर जो बच्चा आये उसका नाम तू 'नारायण' रखना। बस, इतना ही हमें दक्षिणा में तुझसे लेना है।"

अजामिल ने हाँ कहकर साधु से पिण्ड छुड़ाया। जब बेटा हुआ तो नारायण.... नारायण... कहकर पुकारने लगा। आप जानते ही हैं कि नारायण नाम जप से उसकी अपमृत्यु टल गई।

अजामिल जैसा क्रूर आदमी भी मोह से 'नारायण.... नारायण....' जपता है तो कल्याण हो जाता है तो तुम अगर प्रेम से नारायण तत्त्व के तरफ चल पड़ो तो यह जन्म-मरण का चक्कर टल जाय उसमें क्या आश्चर्य ?

असंभव कुछ नहीं है..... सब संभव है।

अपने को हताशा, निरार्शया पलायनवाद की भीषण चक्की में मत पीसो।

दो संन्यासी थे। अपनी झोंपड़ी को ताला लगाकर यात्रा करने गये। दो-चार महीने के बाद लौटे तो देखते हैं कि झोंपड़ी के बरामदे का छप्पड़ आँधी-तुफान के कारण उड़ गया था।

एक साधु बुजुर्ग था। वह हर परिस्थिति में खुश रहने वाला और रास्ता निकालने वाला था। दूसरा था युवक संन्यासी। वह जरा-जरा बात पर बिगड़ने वाला था, उलझने वाला था।

टूटा हुआ अपना झोंपड़ा देखकर युवक संन्यासी कहने लगाः

"अरे भगवान ! तूने इतना ख्याल नहीं रखा ? तूफान के रुख को तूने बदला नहीं ? हम तेरे नाम का जामा पहने हुए हैं, तेरे नाम की माला पहने हुए हैं। इतने वर्षों से तेरा भजन करते हैं। अभी यात्रा करने गये थे, कहीं नाचगान देखने-सुनने नहीं गये थे। अच्छा काम करने के लिए गये थे फिर भी हमारा इकलौता झोंपड़ा तुझे खटका ? पास में खड़ी- बड़ी इमारतें और बड़े- बड़े महल न खटके ? हम गरीब साधुओं का छपड़ा जमीनदोस्त कर दिया।

अरे भगवान ! कम से कम तुझे नेताओं से तो सीख लेना चाहिए था ! नेता भी अपने चमचों की सुरक्षा करते हैं। हम तो दिन-रात तेरे गीत गाते हैं।"

उसकी बात बिल्कुल युक्तियुक्त लग रही है लेकिन है नहीं। युक्ति मनःकल्पित नहीं होनी चाहिए, युक्ति शास्त्र प्रमाण से युक्त होनी चाहिए। मन की कल्पना से गढ़ित युक्ति एक दूसरे को सुना दी तो वह कोई सनातन सत्य नहीं हो सकता। सनातन सत्य में तीन बातों की आवश्यकता हैः

शास्त्र संमत बात हो।

युक्तियुक्त हो।

महापुरुष के द्वारा अनुमोदित हो।

वह युवक संन्यासी फरियाद करता हुआ, ईश्वर को उलाहना देता हुआ अपनी जीवन-शक्ति का ह्रास कर रहा है।

बाहर घटना तो घटती है, उस घटना से तुम उन्नत होते हो कि अवनत होते हो, तुम प्रफुल्लित होकर रास्ता ढूँढते हो कि निराश होकर गिरते हो यह तुम्हारे हाथ की बात है।

तुम्हारे पास मनरूपी कल्पवृक्ष है। तुम जैसी कल्पना करोगे वैसा जगत बनाते जाओगे।

वह युवक संन्यासी कहने लगाः

"अब तेरे नाम का जामा कौन पहनेगा ? तेरे नाम की माला कौन घुमाएगा ? इस छोटे-से झोंपड़े की सुरक्षा नहीं कर सका तो तू हमारी क्या रक्षा करेगा ?"

बात उसकी युक्ति संगत लगती है लेकिन फरियादात्मक युक्ति है।

वह बूढ़े संन्यासी से कहने लगाः

"स्वामी जी ! आज कल कलियुग है। कमाई के वहाँ कुशलता और धार्मिक के वहाँ धाड़....। ऐसा जमाना है। महाराज ! यह ध्यान-भजन भक्तों को करने दो। अपने तो खाओ, पियो और मौज उड़ाओ।"

बूढ़े महाराज तो उसकी बात सुनी-अनसुनी कर रहे थे फिर भी वह युवक आगे बोले जा रहा हैः

"स्वामी जी ! उतारो ये संन्यस्त के गेरुए कपड़े। अब कोट-पेन्ट टाई-शूट-बूट पहनेंगे। कल की बात पुरानी, आज मौज करो। भगवान किसको मिला है ? अगर भगवान होता तो यह हाल होता हमारा ? जिसके लिए घरबार छोड़ा, पत्नी छोड़ी, बच्चे छोड़े, नंगे पैर यात्रा की, सत्तू खाकर दिन गुजारे वह इतना भी नहीं समझता कि इन गरीबों का झोंपड़ा सुरक्षित रखना चाहिए ? वह सर्वत्र है, सर्व-व्यापक है, सर्व शक्तिमान है तो इतना भी नहीं करता ? हम विश्वास नहीं करते भगवान में।"

भोगी और नास्तिक आदमी अगर परमात्म-तत्त्व में विश्वास नहीं करता हो तो परमात्म-तत्त्व उसमें से चला नहीं जाता। वह बड़ा उदार है। अपनी करुणा-कृपा बरसाता ही रहता है, चाहे भोगी नास्तिक पहचाने या न पहचाने यह अलग बात है। परमात्मा जानता है कि देर सवेर ये लोग भी अपने सही रास्ते पर लग ही जाएँगे।

युवक संन्यासी बड़बड़ाये जा रहा है, दिल की भाप निकाले जा रहा है और वृद्ध संन्यासी शांत है, कुछ जवाब नहीं देते। आँखें आकाश की ओर लगी हैं और आँसू बह रहे हैं। परमात्मा के प्रति धन्यवाद से उनका रोम-रोम पुलकित हो रहा है। उनको मौन देखकर युवक संन्यासी को आश्चर्य हो रहा था। वह उनके प्रति एकटक निहारने लगा तब वृद्ध संन्यासी भावपूर्ण वाणी में बोलने लगेः

"वाह प्रभु ! तेरी लीला अपार है। हम जब माता के गर्भ में थे तब वहाँ तूने हमारी सुरक्षा की। जन्म होते ही माँ के वक्षस्थान में दूध बनाया। फिर माँ का स्नेह और बाप का अनुशासन दिया। मित्रों और साथियों की प्रीति से हमें पुष्ट किया। फिर परम पुरुष, संत महात्मा का सत्संग दे दिया ताकि हम सत्य के रास्ते चल पड़े। सदगुरु के द्वार पर पहुँच पाये यह भी तेरी कृपा है नाथ ! हर परिस्थितियों में हमारी रक्षा करता आया है। इस बार भी गर्मियों में आँधी-तूफान का रुख तूने बदला ही होगा इसलिए मात्र आधा छपड़ा ही टूटा। अन्यथा तो सारा झोपड़ा भी नष्ट-भ्रष्ट हो सकता था। हे दयानिधे ! तूने ऐसा नहीं होने दिया।"

फिर युवक की ओर देखते हुए बोलेः

"भाई ! घटना तो घटी है। अब तू सीधा अर्थ ले, अपने कल्पवृक्ष से मधुर फल ले या कातिल कंटक ले, तेरे हाथ की बात है। कल्पवृक्ष तो दोनों देने को तैयार है। तेरा कल्पवृक्ष तेरे पास है। मेरा कल्पवृक्ष मेरे पास है। मेरी खेती में करता हूँ। अपनी खेती आप करो। मैं जिस ढंग से खेती करता हूँ उस ढंग से खेती करने वाले सुखी हुए हैं। तुम जिस ढंग से खेती करते हो उस ढंग से खेती करने वाले अशांत हुए हैं, नरकगामी बने हैं।"

बाहर की परिस्थिति अपनी मनचाही हो यह दुराग्रह मत करो। बाहर की परिस्थिति में मन चाहा आनन्द पैदा कर सकते हो यह कसब जान लो, युक्ति जान लो।

हर आदमी को अपना मन है , अपना अपना स्वभाव है, अपनी अपनी कल्पना है, अपना लेन-देन है, अपना अपना ऋणानुबन्ध है। लोग कभी प्रसन्न रहेंगे कभी झगड़ा करेंगे , एक दूसरे की बात काटेंगे, अपनी मन गाड़ी बात करवाने के लिए कुछ का कुछ करेंगे। यह तो सब होता रहेगा। तुम अपने मन को सुसज्ज बनाते जाओ, मनरूपी कल्पवृक्ष से मीठे फल पाते जाओ।

खून पसीना बहाता जा तान के चादर सोता जा।
यह नाव तो चलती जायेगी तू हँसता जा या रोता जा।।

आजकल संसार में लोग पच-पचकर मर रहे हैं। ऐसे कायदे-कानून और वही वटी व्यवस्था हो गई है कि अच्छे से अच्छा, ईमानदार से ईमानदार आदमी भी बेईमानी किये बिना जी नहीं सकता है, ऐसा उसको लगता है। अच्छाई, सच्चाई और ईमानदारी से धंधा-रोजगार-व्यापारादि करते हैं तो मुश्किल हो रहा है। बेईमानी से करते हैं तो अंतरात्मा डंकता है। एक तो अपनी व्यक्तिगत निजी अशांति होती है, दुःख होता है, आधि-व्याधि-उपाधि होती है, फिर कुदरती कोप होते हैं। न जाने कितने-कितने बिच्छू आदमी के इर्दगिर्द होते हैं और उसके दिल को डंकते रहते हैं। तो क्या करना चाहिए ? हताश-निराश होकर घर का कोना पकड़कर रोना चाहिए ? नहीं.... कभी नहीं....।

रात अंधियारी हो घन घटाएँ काली हो।
मंजिल तेरी दूर हो बड़े बड़े मजबूर हो।।

तो क्या करोगे ?

रुक जाओगे ?.... ना

डर जाओगे ?.... ना

यह बात तो बच्चे भी जानते हैं।

कैसी भी परिस्थिति में अपने मनरूपी कल्पवृक्ष से मीठे फल पैदा करते-करते यात्रा किये जाओ भैया ! संघर्ष, विघ्न और बाधाओं के बीच जो यात्रा होती है वह बड़ी मजबूत होती है जिनके जीवन में विघ्न और बाधाएँ आयी हो उस समय अपने कल्पवृक्ष से जितना अधिक उत्साह पैदा किया उतने वे उन्नत हुए, महान् बने। विघ्न-बाआओं को देखकर जो सिकुड़ गये वे रह गये किनारे पर। अपने मन में दृढ़ निश्चय करो किः

हमें डरा सके ये जमाने में दम नहीं।

हमसे जमाना है जमाने से हम नहीं।।

सब कुछ संभव है... असंभव कुछ नहीं।

विघ्न बाधाएँ, दुःख-कष्ट, शोक-संताप जब आते हैं उस समय बहुत बड़े पहाड़ जैसे लगते हैं पर कुछ समय के बाद उनका उतना बड़प्पन नहीं रहता। कोई भी दुःख जब आता है तब महाविकराल भासता है पर दो घण्टे के बाद उसकी भयानकता कम हो जाती है। दो दिन के बाद उसका उतना प्रभाव नहीं रहता। दो महीने के बाद वह नहीं के बराबर रह जाता है। दो साल के बाद वह दुःख याद भी नहीं रहता। दुःख याद दिलाने वालों की भी याद नहीं रहती। सब समय की धारा में बह जाता है।

....तो, जो आकर चला जा रहा है उससे प्रभावित क्या होना ? वह तो जा ही रहा है। उससे भयभीत क्यों होना ? आज तक सुख-दुःख आये वे चले गये। कल भी जो आयेंगे वे चले ही जाएंगे। अतः अभी वर्त्तमान में अपने वास्तविक तत्त्व डट जाओ तो तुम देवों के देव हो जाओगे।

मंदिर मस्जिद-चर्च में जाना अच्छी बात है पर जीवित महापुरुष के चरणों में पहुँचे तो परम सौभाग्य की बात है।

गोरख ! जागता नर सेवीए.....।

समाज जब तक जीवित ब्रह्मवेत्ताओं के चरणों में नहीं पहुँचता तब तक मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजाघरों में जाता रहता है फिर भी अपने दिल का मंदिर खुलता नहीं, परम सत्य का दीदार होता नहीं। पुजारियों का मंदिर तो खुलता रहता है और बन्द होता रहता है लेकिन आपके दिल का मंदिर तो तब खुलेगा, जब आप जिनके दिल का मंदिर पूर्ण रूप से खुल गया है ऐसे ब्रह्मवेत्ता सदगुरुओं के चरणों में पहुँचोगे। उनके पास जाने से ही अपने दिल-मंदिर का द्वार खुल सकता है, आत्मदेव का दीदार हो सकता है अन्यथा दिलमंदिर के द्वार जीवन के अंत तक बन्द ही रह जाते हैं।

वे लोग धन्य हैं, परम सदभागी हैं जिनको जीवित ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष मिल गये हैं।

भागवत में प्रसंग आता हैः

वसुदेवजी ने बड़ा यज्ञ करवाया। बड़े-बड़े संत-महात्मा, ऋषि-महर्षि-मुनियों को निमंत्रण दिया। लम्बा-चौड़ा आयोजन किया गया। श्रीकृष्ण त्रिकालज्ञान ऋषियों की सेवा करते हैं तो किसी ब्रह्मवेत्ता मस्त संत ने कहाः

"अरे कन्हैया ! अब छोड़ो ये सब नाटक। हम आपको ठीक-से जानते हैं। आपकी लीला हमारे आगे नहीं चलेगी। ओ नटखट नागर ! यह खेल छोड़ो नहीं तो हम सब पोल खोल देंगे।"

तब भगवान श्री कृष्ण कहने लगेः "हे मुनीश्वर ! पचास वर्ष की निष्कपट भक्ति से भी हृदय का अज्ञान दूर नहीं होता है। हृदय शुद्ध जरूर होता है पर अज्ञान नहीं मिटता। ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष के एक मुहूर्त के समागम से, उनके चरणों की एक मुहूर्त की सेवा से हृदय का अज्ञान दूर हो सकता है। धातु से बनी मूर्ति में भगवत्-बुद्धि, जल से भरे हुए जलाशयों में तीर्थ-बुद्धि, हाड़-मांस के पुत्र-परिवार में मेरेपन की बुद्धि करते हैं पर महापुरुषों में जिनकी पूज्य बुद्धि नहीं है वे साक्षात् गोखर माने गये हैं।"

(श्रीमद् भागवतः 10.84.11.12.13)

मकान बनाने में गधे का बड़ा सहयोग है। मिट्टी उठाता है, रेती ढोता है, कई प्रकार का बोझ वहन करता है लेकिन मकान बनने के बाद उसमें बैठने को भी आमंत्रण नहीं दिया जाता। गल्ती से प्रांगण में घुस जाय तो डण्डे पड़ते हैं। ऐसे ही जो लोग महापुरुषों का सत्संग नहीं करते उनका अहंकार, कर्त्तापन और भोक्तापन नहीं मिटता। जब तक अहंकार , कर्त्तापन, भोक्तापन नहीं मिटता तब तक राग- द्वेष के, मान-अपमान के, यश-अपयश के, जन्म-मरण के डण्डे खाने ही पड़ते हैं। सुख-दुःख की चोटें सहनी ही पड़ती हैं।

विवेकानन्द बोलते थेः

"बारह कोस दूर नंगे पैर, नंगे सिर, भूखे पेट, पैदल चलकर महापुरुषों की मुलाकात करने का मौका मिल जाय तो भाइयों ! मैं अभी भी तैयार हूँ। मैं जानता हूँ कि ब्रह्मवेत्ता सत्पुरुषों के संग से क्या मिलता है।"

मौलाना जलालुद्दीन नवाबी ठाठ से रहते थे। बड़े धनाढ्य थे। उन्होंने हस्तलिखित कई पुस्तकें एकत्रित की और सत्य का रास्ता खोजा। जो बात अच्छी लगती वह अपनी भाषा में लिख लेते थे। उनके महल के प्रांगण में बाग-बगीचा और जलाशय था।

सुबह जलाशय के किनारे बैठकर अपना कुछ ग्रंथ लिख रहे थे। इतने में एक सूफी फकीर सम्स्तबरेज घूमते-घामते वहाँ पहुँचे। उस समय मौलाना स्याही भरने के लिए भीतर गये थे। फकीर ने देखा मौलाना पौथी तो लिख रहा है लेकिन जिससे पोथियाँ बनती हैं उधर तो जाता नहीं। उन्होंने सारी पोथियाँ उठाकर जलाशय में डाल दीं।

मौलान जलालुद्दीन स्याही भरकर बाहर आये तो मस्त पागल सा कोई आदमी खड़ा है और पोथियाँ पन्ने सब गायब हैं। पूछाः

"भाई ! तू कहाँ से आया ?"

कोई जवाब नहीं मिला।

"मेरी पुस्तकें कहाँ गई ?"

आँखों से फकीर ने इशार किया के ये पड़ी हैं पानी में।

मौलान जलालूद्दीन देखकर आग-बबूला हो गये। कहाँ-कहाँ से किताबें मँगायी थीं ! कोई अरब से कोई यूनान से कोई कहीं से बड़ी मेहनत से साहित्य एकत्रित किया था सत्यान्वेषण के लिए। सबका सार कागजों में लिखा था, कैसा-कैसा मधु-संचय किया था ! वह सब सामग्री पानी के हौज में ?

पुस्तकों का सार तो क्या होता है... जो अपने मन को जचता है उसे आदमी सार मानता है। अपने मन की कल्पना में ठीक लग गया उसे सार कह दिया। वास्तविक सार तो ब्रह्मवेत्ता बताते हैं। सारे ब्रह्माण्ड का सार है तुम्हारा आत्मा।

मन तू ज्योति स्वरूप अपना मूल पिछान।

मौलाना जलालुद्दीन अभी उस सार में नहीं पहुँचे थे। फकीर को घूरते हुए बोलेः

"तुमने यह क्या किया ? मेरी सब किताबें पानी में डाल दीं ? मेरे परिश्रम को पानी में डाल दिया ? मेरा सर्वस्व नाश कर दिया ?"

फकीर ने कहाः "तुम्हारा सर्वस्व अगर यही है तो ले लो।" कहकर पानी में गोता लगाया और किताबें लेकर बाहर आये। स्वयं पूरे भीग गये लेकिन किताबें सब वैसी की वैसी कोरी, बिल्कुल सुरक्षित।

मौलाना समझ गये कि ये कोई ब्रह्मवेत्ता समर्थ योगी हैं। पैर पकड़ लिये। उनसे बहुत लाभान्वित हुए और बाद में वे भी अच्छे फकीर हो गये। वे लिखते हैं किः

"ऐ इन्सान ! तू अगर पत्थर है तो महापुरुष के संपर्क से हीरा बन जाएगा। तू अगर अभेद्य हीरा है तो महापुरुष की निगाह से तुझमें धागा पिरोया जायगा और प्रियतम के कण्ठ तक पहुँच जाएगा, उन महापुरुष की महिमा से।"

वे वृद्ध संन्यासी आकाश की तरफ निगाहें डाले कहे जा रहे हैं-

"हे प्रभु तुझे खूब-खूब धन्यवाद है। अब हम इस आधे टूटे झोंपड़े में रात को आराम भी कर लेंगे और प्रभात को तेरे नज़ारे देखते हुए अपनी छुपी हुई जीवन-धारा को भी जाग्रत करेंगे।"

रात को दोनों संन्यासी झोंपड़े में सोये हैं। जवान संन्यासी करवटें ले रहा है। अपने भाग्य को कोसता है। वे वृद्ध महापुरुष निश्चिंतता से आराम कर रहे हैं। जब करवट लेते हैं तो उदगार निकलते हैं-

"वाह ! क्या मजे की बीत रही है ! जीवनभर लोग देहरूपी कब्र में सोते हैं, संन्यासी समाधि में सोते हैं। तू हमारी रात्रि के सोने को भी जगने में बदल रहा है। अगर यह छपड़ा खुला न होता तो घसघसाट सो जाते। इतना समय तेरे चिन्तन का आनन्द न लेते। प्रभु ! तेरी बड़ी कृपा है।"

इस प्रकार धन्यवाद से उनकी रात गुजरी। सुबह हुई तो उनकी आँखों में विलक्षण झलक थी। ओठों पर कोई मधुर मुस्कान थी। दिल में नूरानी नूर की धड़कन थी। उस जवान संन्यासी के चेहरे पर साड़ा बारह बजे थे। दोनों के लिए घटना तो वही की वही थी। कुटिया वही की वही थी, देश और काल वही का वही था। केवल कल्पवृक्ष से फल लेने की कला अलग-अलग थी।

तुम्हारे पास भी कल्पवृक्ष है। तुम अपने कल्पवृक्ष से ब्रह्मज्ञान के फल उतारना, 'सोऽहं.. शिवोऽहं...' के फल पैदा करना। 'यह मेरा बेटा.... यह मेरा परिवार...' ये सब बच्चों की कहानी है... सब बेवकूफी की बात है।

आपकी बेटियाँ जमाई की अमानत हैं। समय आने पर ले जाएंगे। आपके बेटे बहुओं की अमानत हैं। समय आने पर उनके हो जाएंगे। तुम्हारा शरीर शमशान की अमानत है। समय आने पर स्वाहा कर दिया जायेगा। तुम्हारा आत्मा परमात्मा का है। इसलिए तुम जिसके हो उसके हो जाओ और शरीर किसका है यह समझ लो। ऐसा समझ लेने से तुम्हें तसल्ली रहेगी।

घर में जलता हुआ चिराग एकदम बुझ जाता है , अन्धेरा हो जाता है तो 'हाय ! चिराग बुझ गया.... अन्धेरा हो गया.....' चिल्लाते हो लेकिन हर रोज शाम को इतना बड़ा सूर्य ढलता है, डूब जाता है, रात्रि हो जाती है, सर्वत्र अन्धकार फैल जाता है फिर भी नहीं बोलते कि 'हाय ! सूर्य डूब गया !' क्योंकि तुम जानते हो कि यह प्रकृति की व्यवस्था है। हर रोज शाम होना , सूर्यास्त होना, रात्रि होना स्वाभाविक है। ऐसे ही अगर तुम जान लो कि बच्चियाँ जमाइयों की अमानत हैं, बेटे बहुओं की अमानत हैं, शरीर श्मशान की अमानत है तो मौत का खौफ नहीं रहेगा।

मरने से पहले तुम जिसके हो उसी के हो जाओगे तो तुम्हें पता चल जायगा कि हम जन्मने-मरने वाले नहीं हैं। जन्मने-मरने वाले हमारे साधन थे। जितना साधनों से मोह था, देह में अहंबुद्धि थी उतना परेशान हो रहे थे। अब मोह और अहंकार चला गया।

सतगुरु मेरा शूरमा करे शब्द की चोट।
मारे गोला प्रेम का हरे भरम की कोट।।

शाह लतीफ ने कहाः

जे भांई जोगी थ्यां तमां छड तमाम।
सबुरजे समशेरसां कर कीने खे कतलाम।
गोला जे गोलन् जा तिनजो थी गुलाम।
त नांगा तुहिंजो नाऊँ लिखजे लाहुतियुन्में।।

अगर तू योगी होना चाहता है तो तमाम इच्छाओं को छोड़ दे। जो कुछ पाने के चक्कर में है वह दुःखी रहता है। जो कहीं जाकर सुख लेने के चक्कर में है वह दुःखी ही रहता है। जो जहाँ है वहीं सुखी होने की कला नहीं जानता वह स्वर्ग में या वैकुण्ठ में भी सुखी नहीं हो सकता।

राजा ययाति ने खूब भोग भोगे पर सुखी नहीं हो सके। भर्तृहरि ने बड़ा अच्छा विश्लेषण करके बताया हैः

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः
तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।

"हम विषयों को न भोग सके, विषयों ने ही हमें भोग लिया। हम तप नहीं कर सके, पर तप ने ही हमें तपा लिया। काल व्यतीत न हुआ किन्तु हम ही व्यतीत हो गये। तृष्णा समाप्त न हुई किन्तु हम ही समाप्त हो गये।'

शराबी समझता है कि मैं शराब पीता हूँ। वास्तव में शराब उसे पी लेती है। बीड़ी डाकण से पीने वालों की ही पी जाती है। बीड़ी पीने से 64 बीमारीयों की नींव पड़ जाती है। सुबह में खाली पेट चाय पीते हैं तो उनका वीर्य कमजोर हो जाता है, ओज क्षीण होता है।

हल्के खान-पान और हल्के विचारों से भी बचना है। हल्के संग से भी बचना है। कोई आदमी गरीब है, उसका संग करना हल्का संग है ऐसी बात नहीं है। जो तुच्छ चीजें पाकर, भोगी जीवन जीकर अपने को भाग्यवान मानते हैं उनका संग हल्का संग है। ऐसे लोगों की बुद्धि तो हल्की है ही, ऐसे लोगों को जो बड़ा मानता है उन पर ज्यादा दया आती है। जिसके पास अधिक सुविधा है वह बड़ा नहीं है। बड़ा आदमी तो वह है जो बिना सुविधा के भी आनन्दित रह सकता है, प्रसन्न रह सकता है और अपने कल्पवृक्ष में मीठे फल ले सकता है।

वृद्ध संन्यासी ने युवक साथी से कहाः "मित्र ! वेश बदलकर पेन्ट-शर्ट-कोट पहनने से भी सुख न मिलेगा और देश विदेश जाने से भी सुख न मिलेगा। अगर विदेशों में सुख होता तो वहाँ के लोग भारत का योग सीखने क्यों आते और अत्यंत भोगी लोग आत्महत्या करके क्यों मरते ? सुख तो अपने दिल में है।

दिले तस्वीरे है यार जबकि गरदन झुका ली मुलाकात कर ली।

ऐसे सुख को तू जान ले भैया ! अगर जीवन जीने का ढंग नहीं सीखा तो वैकुण्ठ में भी जाएगा तो लौट आयगा।

एक युवक जहाँ माइयाँ पनघट पर पानी भर रहीं थीं वहाँ खड़ा होकर पेशाब कर रहा था। एक बूढ़ी माई ने उसे डाँटते हुए पूछाः

"अरे तू कौन है रे ? कहाँ से आया है ?"

"मेरा नाम बेवकूफ है। मेरी औरत फजेती भाग गई है, उसको खोजने निकला हूँ।"

बुढ़िया ठहाका मारकर हँस पड़ीः "जहाँ बेवकूफ होता है वहाँ फजेती तो साथ ही चलती है। तू उसे खोजने निकला है ?"

ऐसे ही जो नकारात्मक जीवन जीता है, बेवकूफी से फरियाद बनाता है उसकी सब जगह फजेती होती रहती है। जो धन्यवादात्मक जीवन जीता है वह, खाने को अन्न नहीं, पहनने को वस्त्र नहीं, रहने को बंगला नहीं फिर भी शुकदेव जी, जड़भरत जी की तरह मस्ती से जीवन बिता सकता है।

तुम जब सत्संग से घर लौटोगे तब कई प्रकार के बिच्छू डंक मारेंगे। फरियादात्मक विचार करोगे तो वे सुधर नहीं जाएंगे। भीतर से समझनाः ये विघ्न-बाधाएँ बता रहीं है कि सुख तो एक राम में है। बाकी संसार तो ऐसे ही चलता रहता है। हरि ॐ तत्सत् और सब गपशप्...।

जब जब विघ्न-बाधाएँ सताने लगे तब तुम हरि ॐ की मदिरा का थोड़ा सा घूँट भर लेना। तुम्हारा चित्त चैन और आराम के अनुभव करेगा। फिर नेता को भी तुम्हारे आगे ठीक से व्यवहार करना पड़ेगा और ऑफिसर को भी तुमसे रिश्वत पाने की लालच छोड़नी पड़ेगी।

'मैं तो मर जाऊँगा... ट्रेन के नीचे जा गिरूँगा...' ऐसा करके आप कुटुम्बीजनों को चुप करने में सफल नहीं होगे। एक तो वे पहले से अशांत हैं। उनकी अशांति दूर करने के लिए तुम इस प्रकार दूसरी अशांति पैदा करोगे तो काम नहीं चलेगा।

वेदान्त केवल जंगलों में जाकर पकाने की विद्या नहीं है। यह तो तुम्हारे अपने घर के चूल्हे पर पकाने की विद्या है।

न करे नारायण.... और तुम्हारे घर में झगड़ा हो जाय। श्रीकृष्ण के घर में झगड़ा होता था, राम जी के घर में झगड़ा होता था तो तुम्हारे घर में झगड़ा हो जाए तो कोई बड़ी बात नहीं है। तो... जब घर में झगड़ा हो जाय तब सत्संग के वचन याद रखना।

कथा सत्संग सुनते सुनते आनन्द आता है। सत्संग सुनते सुनते एक एक क्षण अश्वमेध यज्ञ के पुण्य की प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं, सत्संग मुक्ति देता है। इतना ही नहीं, सत्संग हृदय में प्यार पैदा करता है। इतना ही नहीं, सत्संग श्रेष्ठ नागरिक बनाता है। सत्संग जीवन्मुक्त होने का मार्ग बताता है। इतना ही नहीं, व्यवहार में उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने की मास्टर की सत्संग तुम्हारे हाथ में धर देता है। जब, वहाँ जिस कुँजी की जरूरत पड़े वह मिल जाया करती है। यह सब सत्संग की बलिहारी है।

जब विघ्न-बाधाएँ आवे तब ठहाका मारकर हँसो। विघ्न-बाधाएँ उड़ जाएँगी।

संसार की भट्ठी में तो समस्याएँ आया करती हैं। पकने के लिए ही संसार-भट्ठी में आना पड़ता है। वशिष्ठ जी महाराज कहते हैं-

"हे राम जी ! दुःख नहीं देखा हो तो संसार में जाओ। संसार बेचारे बिना आग के पचते रहते हैं।"

युवक समझता है कि शादी में सुख है। बाद में पता चलता है कि सब मुसीबत है। मगर अब भागने की जरूरत नहीं है क्योंकि पत्नी को लेने तू ही गया था। अब तो हँसते-हँसते सब कष्ट भोगो। दुःख को हँसते हुए भोगने की कला आ गई तो वह दुःख तपश्चर्या बन जाएगा।

घर में झगड़ा हो जाय, लोग लड़ने लगें, अशांत हो जाएँ तब घर में किसी को आँख मत दिखाना। अपने भीतर आग पैदा मत करना। जल्दी से अपना मुँह पानी से धो लेना, दो-चार आचमन ले लेना, पानी के घूँट पी लेना। फिर जो लड़ रहे हैं उनके मुँह पर 'नारायण.... नारायण....' करके पानी छिड़क देना। बोलना कि आज मजे में लड़कर दिखाओ। मैं देखने को बैठा हूँ। आपका घर कैसा भी झगड़ाखोर हो, वह शांति के स्वर्ग में बदल जाएगा। क्योंकि नारायण सब नर-नारियों में चमकता हुआ बैठा है। वह जन्म मरण के चक्कर से बचाने वाला है तो झगड़े से नहीं बचाएगा ?

सुख कपड़ों में नहीं होता, अनपढ़ या विद्वान बनने में नहीं होता। सुख तो होता है समझ में।

अपनी समझ को बढ़ाओ। उसका सदुपयोग करो। कभी मौका मिले तो श्मशान में जाओ। अपने मन को बताओ कि आखिरी मंजिले मुकाम तो यह है। जिसको तू 'मैं मैं' मानता है उसकी मंजिल यह है। तू अपनी मंजिल खोज ले। शरीर की मंजिल पर तो शरीर आ ही जाएगा। नहीं आएगा तो जाएगा कहाँ। चार लोग कन्धे पर चढ़ाकर ले आएंगे।

श्मशान में ज्ञान और वैराग्य का निवास है।

भागवत में कथा आती है कि भक्ति रो रही थी। क्योंकि उसके दो जवान बेटे ज्ञान और वैराग्य, दोनों मूर्छित होकर पड़े थे। उनके वियोग में बुढ़िया भक्ति रो रही थी।

ज्ञान के बिना भक्ति रोती ही रहती है। ज्ञान के बिना जीव की दीनता हीनता जाती नहीं। ज्ञान के बिना तो 'यह भगवान है' ऐसा पता भी नहीं चलता। 'यह भगवान है' ऐसा ज्ञान भी तो होना चाहिए। तभी भक्ति हो सकेगी।

एक बार संत-परिषद मिली थी। संत लोग तीर्थयात्रा करने जाते तो गोरा कुम्हार के वहाँ दो चार दिन निवास कर लेते थे। ऐसे मौके के स्थान पर भक्त गोरा कुम्हार का घर था।

एक बार ज्ञानेश्वर महाराज, मुक्ताबाई, नामदेव तथा और कई संत गोरा कुम्हार के अतिथि बने थे। सब बैठे तब मुक्ताबाई ने लकड़े की एक छोटी-सी हथौड़ी उठाई। गोरा कुम्हार से पूछाः "यह क्या है ?"

"यह मिट्टी के घड़े परखने का साधन है।" भक्त जी ने बताया।

मुक्ताबाई ने विनोद करते हुए कहाः "आप मिट्टी के घड़े बनाते हो ऐसे ही ब्रह्माजी ये मनुष्यरूपी घड़े बनाते हैं। मिट्टी के घड़े में पानी भरा जाता है और ब्रह्माजी के घड़े में ज्ञान और

राम रस भरा जाता है। मिट्टी के घड़े में पानी भरने से पहले कसौटी के लिए कई लोग टकोरा मारते हैं।"

निभाड़े में घड़ा पक जाता है तब कुम्हार उसे टकोरा मारकर खात्री कर लेता है। फिर कुम्हारिन टकोरा बजाकर रखती है। घड़े बेचने वाला भी टकोरा बजाता है। खरीदने वाला ग्राहक भी टकोरा मारकर जाँच कर लेता है कि घड़ा बराबर पका तो है ! फूटा हुआ तो नहीं ! घड़ा घर में पहुँचता है तो सेठानी भी यही कसौटी करती है। आखिर में पानी भरने से पहले भी नौकर भी टकोरा मारना चूकता नहीं।

दो बाल्टी पानी रखने वाले चार पैसे के घड़े की इतनी कसौटियाँ होती हैं, इतने टकोरे खाने पड़ते हैं तो जिसमें परब्रह्म परमात्मा को प्रकटाना है उसकी भी तो पूरी कसौटी होनी चाहिए !

"देखो भक्तजी ! हम लोग भी तो ब्रह्माजी के घड़े हैं। उसमें ब्रह्मज्ञान का मधुर जल भरना है। आप जरा सबके सिर पर टकोरा मारकर जाँच करो न, कि कौन सा घड़ा कच्चा है कौन सा घड़ा पक्का है, पता चले।"

वार्ता विनोद हो रहा था। सब संत सहमत हुए। गोरा कुम्हार अपनी हथौड़ी लेकर सब संतों के सिर पर बारी-बारी से हल्के हल्के मधुर टकोरे मारने लगे। और सब संत तो सत्ता-समान में थे पर जब नामदेव की बारी आयी तो वे चिढ़कर बोल उठेः

"हम कोई मिट्टी के घड़े थोड़े ही हैं कि इस प्रकार टकोरे मारकर देखा जा रहा है ?"

गोरा कुम्हार ने न्याय दियाः "और तो सब पक्के घड़े हैं, एक यह घड़ा कच्चा है। इसे ब्रह्मज्ञान का फल पकाना नहीं आया।"

नामदेव और गुस्से में हो गये। बुद्धू को कहो कि तू बुद्धू है उसे गुस्सा आयेगा। जब क्रोध आ गया तो तू बुद्धू है ही। किसी के भड़काने से भड़क गया तो मूर्ख है ही।

शुकदेव जी जा रहे थे। लोगों ने उन्हें पागल कहा, 'हुर्रियो....' कहा, लड़कों ने कंकड़ पत्थर मारे फिर भी वे परम शांत.....। जड़भरतजी को राजा रहुगण डाँट रहा है फिर भी जड़भरत जी के मुख पर वही शांति....।

मुस्कराके गम का जहर जिसको पीना आ गया।
यह हकीकत है कि जहाँ में उनको जीना आ गया।।

सब संतों ने कह दिया कि 'हाँ, नामदेव अभी कच्चा घड़ा है।' नामदेव भीतर ही भीतर झुंझला रहे हैं कि, 'मुझे ये कच्चा घड़ा कह रहे हैं ! मैं जब चाहूँ तब भगवान विट्ठल दर्शन देते हैं और मैं कच्चा घड़ा ? मैं इन लोगों को बता दूँगा।'

नामदेव गये मंदिर में। विट्ठल.. विट्ठल...' करते हुए थोड़े शांत हुए, अहंरहित हुए तो वही चैतन्य विट्ठल होकर प्रकट हो गया। नामदेव बोलेः

"प्रभु ! उन लोगों ने मुझे कच्चा घड़ा सिद्ध किया है। अब उनको दिखा दो कि मैं आपका परम भक्त हूँ।"

भगवान मुस्करायेः "नामदेव ! संतों ने जो कहा है वह सत्य कहा है। अभी तू कच्चा घड़ा है।"

"भगवान ! आप भी मुझे कच्चा घड़ा कहते हैं ?"

"हाँ नामदेव ! जैसा है वैसा कहता हूँ। तू मेरा इतना निकटवर्ती बन गया है कि मैं तुझे पक्का घड़ा बनाऊँ यह मेरे बस की बात नहीं है। तू मेरे उपदेश का निदिध्यासन नहीं करेगा। तेरा प्रेम तो बढ़ गया है पर प्रेम के साथ जिज्ञासा भी होनी चाहिए। वह अगर नहीं है तो प्रेम की धारा बहेगी अन्तःकरण से। अन्तःकरण सदा बदलता रहेगा। कभी प्रेम की ऊँचाई पाएगा कभी नीचे आयेगा। इसलिए प्रेमी भक्त होने के बाद भी तत्त्वज्ञान में छलांग मारनी पड़ेगी। मेरा उपदेश तुम्हें लगेगा नहीं।"

नामदेव भगवान से प्रार्थना करने लगेः "प्रभु ! कुछ भी हो, मुझे संतों के आगे पक्का घड़ा सिद्ध कर दो। सब के सामने मेरी इज्जत खराब हो गई है। आप कुछ भी उपाय करो।"

किसी के सामने पक्का घड़ा होने की आकांक्षा है इसी बात से पता चलता है कि घड़ा कच्चा है। कोई तुम्हें बड़ा कहे यह लालच होना ही छोटेपन की निशानी है। सचमुच सत्कर्म करने के लिए सत्कर्म करो, बड़ा कहलाने के लिए नहीं। दानी कहलाने के लिए दान मत करो लेकिन दान करना तुम्हारा कर्त्तव्य है, तुम्हारा स्वभाव है इसलिए दान करो। दिखावा करने से काम नहीं चलेगा। बम्बई और अमेरिका के लोग प्रायः परस्पर मिलते हैं तो मुख पर हास्य लहराते हैं, बिल्कुल कृत्रिम। केवल ओंठ खुलते हैं, दिल तो बन्द ही रहता है। विमान में एयरहोस्टेस भी पेसेन्जरों के साथ स्मित करके बात करती है।

भीतर तुम्हारा दिल छलके और फिर ओंठ खुल जाय तो वह मजा कुछ और ही है। हृदय की प्रसन्नता मुख पर छलके तो असली मजा है।

भगवान विट्ठल नामदेव से कहने लगेः "नामदेव ! अगर पक्का घड़ा बनना है तो एक काम कर। जंगल में अमुक जगह पर एक संत रहते हैं , विसोबा खेचर। वे ब्रह्मवेत्ता है। उनकी शरण में जा। उनका उपदेश पचाएगा तब तू पक्का घड़ा बनेगा।"

"प्रभु ! मैं जब चाहूँ तब आप दर्शन देने की कृपा करते हैं फिर भी मुझे विसोबा खेचर के पास जाना होगा ?"

"हाँ नामदेव ! मैं भी जब रामावतार में आया था तब गुरु वशिष्ठजी महाराज की शरण में गया था। जीव को आत्यांतिक कल्याण के लिए सदगुरु के चरणों में जाना ही पड़ता है।"

नामदेव गये। देखा तो शिवालय में शिवजी के लिंग पर पैर पसारकर वे बूढ़े साधू पड़े हैं। नामदेव के हृदय को धक्का लगा। सुना था कि संत तो ब्रह्ममुहूर्त में उठते हैं। अब सूर्योदय हो गया है फिर भी ये लेटे हुए हैं। और पैर शिवलिंग पर ?

उनको पता नहीं था कि ब्रह्मज्ञानी जब जागते हैं तब ब्रह्ममुहूर्त होता है।

ब्रह्मज्ञानी का भोजन ज्ञान ब्रह्मज्ञानी का ब्रह्मध्यान।
ब्रह्मज्ञानी की मत कौन बखाने ब्रह्मज्ञानी की गत ब्रह्मज्ञानी जाने।
ब्रह्मज्ञानी को खोजे महेश्वर ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर।।

विसोबा खेचर को देखकर नामदेव चार कदम पीछे हट गये। श्रद्धा 'डाउन' हो गई।

हार्ट फेल होना इतना हानिकारक नहीं, श्रद्धा फेल होना बहुत हानिकारक है। हार्ट फेल होगा तो एक बार मरेगा, श्रद्धा फेल हुई तो अनंत-अनंत बार मरना पड़ेगा।

नामदेव वापस लौटने के लिए मुड़ ही रहे थे कि वे संत बोलेः

"अरे नामदेव ! विट्ठल ने भेजा है फिर भी वापस जा रहा है ?"

"बाबा ! आपको कैसे पता चला ?" ....और आप तो भगवान शिव के पिण्ड पर पैर पसारकर सो रहे हैं ! आप ही बताओ, मैं क्या करूँ ?" बाबा का अन्तर्यामीपना देखकर नामदेव के हृदय में श्रद्धा का दीपक फिर से जगमगा उठा था।

"देख नामदेव ! मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ। पैरों में हिलने की ताकत नहीं रही। तुम ऐसा करो, मेरे पैर उठाकर वहाँ रखो जहाँ शिव न हो, अशिव हो।"

नामदेव ने बड़े आदर से, सेवाभाव से विसोबा खेचर के पैर उठाये। शिवलिंग बिना की खाली जगह पर पैर रखे। योगी के संकल्प से वहाँ भी नामदेव को शिवलिंग दिखाई दिया। नामदेव ने तुरन्त पैर वहाँ से हटाकर दूसरी जगह रखा तो वहाँ भी शिवलिंग, तीसरी जगह रखा तो वहाँ भी शिवलिंग। जहाँ जहाँ पैर रखते गये वहाँ वहाँ शिवलिंग दिखाई दिये। नामदेव सोच में पड़ गये.... अब पैर कहाँ रखूँ ? नामदेव की श्रद्धा उमड़ पड़ी। भावविभोर होकर उनके पैर अपने सिर पर रख दिये।

ब्रह्मनिष्ठ संत पुरुष की चरणरज सिर पर लगी तो नामदेव के ज्ञानतंतुओं की प्यास जग गई। संत श्री के चरणों में बैठ गये। आर्त भाव से प्रार्थना करने लगेः

"भगवन ! मैं आपकी शरण में आया हूँ, श्रीचरणों का आश्रय लेने आया हूँ.... अब आप मेरी प्यास बुझाइये। मुझे तत्त्वज्ञान दीजिये।"

विसोबा खेचर प्रसन्न थे। नामदेव भी अधिकारी तो थे ही। प्रेमा-भक्ति से ओतप्रोत थे। तभी तो भगवान विट्ठल प्रत्यक्ष प्रकट हुआ करते थे। ब्रह्मवेत्ता के थोड़े से उपदेश मात्र से नामदेव तत्त्वज्ञान को उपलब्ध हो गये। विट्ठल तत्त्व का ज्ञान हो गया।

देखा अपने आप को मेरा दिल दीवाना हो गया।
ना छेड़ो मुझे यारों मैं खुद पे मस्ताना हो गया।।

नामदेव अपने आप पर सन्तुष्ट हो गये। यही बात गीता में इस प्रकार कही हैः

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धियो मद् भक्तः स मे प्रियः।।

'जो योगी निरन्तर संतुष्ट हैं, मन-इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए हैं और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय हैं।'

(भगवद् गीताः 12.14)

भगवान हमें प्रिय लगें यह तो ठीक है लेकिन जब भगवान को हम प्रिय लगने लगें तब पूरा काम बन जाता है। नारायण..... नारायण....नारायण....।

नामदेव अपने निवास स्थान में पहुँचे। एक दिन बीता... दूसरा दिन बीता... वही ब्रह्मानन्द की गहरी मस्ती में मग्न। तीसरे दिन भगवान विट्ठल वहाँ प्रकट हो गयेः

"हे नामदेव ! क्या हो गया तेरे को ? अब मेरे पास मंदिर में आता नहीं ?"

"भगवान क्षमा करो। पहले मैं मानता था कि आप वहीं एक ही जगह पर हो परन्तु अब पता चला है कि ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ आप न हो। फिर आपको रोज-रोज परेशान करने वहाँ क्यों आऊँ ?"

भगवान मुस्कुराते हुए बोलेः "देख नामदेव ! आज तक तू मेरे पास आता था पर अब मैं तेरे पास आ गया हूँ। ऐसी महिमा है ब्रह्मज्ञानी सदगुरु के उपदेश की !"

यह है मनरूपी कल्पवृक्ष का चमत्कार। आपके पास भी यह कल्पवृक्ष है। आप जैसा चाहते हैं, जहाँ चाहते हैं वहाँ पहुँच सकते हैं।

राजा ययाति स्वर्ग में पहुँचे हैं पर वहाँ शाश्वत सुख नहीं पाया। ब्रह्मलोक में गये, सुख नहीं पाया। अंत में जब नीचे गिराये गये तो उनकी प्रार्थना के मुताबिक अष्टक, प्रतर्दन, वसुमान और शिबि नामक चार ऋषियों के बीच गिरे। ययाति ने उन महापुरुषों से प्रार्थना कीः

"महाराज ! अब मुझे अपने घर में पहुँचाइये।"

ऋषियों की कृपा बरसी, ययाति का भाग्य खुला और ब्रह्मज्ञान पाया।

आपका भी यही लक्ष्य होना चाहिए।

आत्मानंद में मस्त हैं करें वेदान्ती खेल।
भक्ति योग और ज्ञान का सदगुरु करते मेल।।

अपने कल्पवृक्ष से ऐसे फल पाओ की आत्मानन्द में मस्त हो जाओ। खाओ, पियो, धंधा-व्यापार करो यह वेदान्ती खेल बन जाय। किसी भी कार्यभार से दब मत जाओ। "यह मेरी जवाबदारी है.... काम का टेन्शन है...." ऐसा करके संसार का बोझा ढोनेवाला वैशाखनन्दन (गधा) मत बनो। कुलीन राजकुमार की तरह उत्साहपूर्वक व्यवहार को मनोरंजक खेल समझकर विनोद करते हुए, आनन्दपूर्वक, मजे से कार्य करो।

व्यवहार को प्रेम से भर दो, व्यवहार बन्दगी बन जाएगा। बन्दगी में अगर प्रेम नहीं है तो बन्दगी भी मुसीबत बन जाएगी।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

राग-द्वेष की निवृत्तिरूप अभ्यासयोग

व्यवहार में जब राग-द्वेष ज्यादा होता है तब समझ लेना चाहिए की अपने आत्मस्वरूप का अभ्यास नहीं हो रहा है। आत्म-चिन्तन और वेदान्त विचार इतना सहज और इतना गहरा होना चाहिए कि राग-द्वेष के प्रसंग पर आत्म-विचार अपने आप आकर खड़ा हो जाय। फिर व्यवहार में राग-द्वेष दिखेगा पर भीतर टिकेगा नहीं। यह अभ्यास की बलिहारी है।

साधक अगर अभ्यास नहीं करता है तो राग-द्वेष का प्रसंग होगा जरा-सा पर भीतर ही भीतर उसका बार-बार चिंतन-पुनरावर्तन करके वह अपनी शक्ति क्षीण कर बैठता है, अपना सत्यानाश कर लेता है। अभ्यास अगर ठीक से होता रहेगा तो कैसा भी बड़ा राग-द्वेष का प्रसंग आ जाय, आत्मस्वरूप के स्मरण मात्र से उनकी नींव डगमगा जाएगी। राग-द्वेष ठोस बनकर हानि नहीं पहुँचा सकेगा। अगर राग-द्वेष बना रहा तो व्यक्तियों में टुकड़ीबाजी हो जाती है, अपने वाले और परायेवाले का भेद खड़ा हो जाता है, दिल में सतत जलन रहा करती है।

हैं तो एक ही वस्तु.... एक अखण्ड परब्रह्म परमात्मा की सत्ता। उसमें किसी को भला मानना किसी को बुरा मानना किसी को अपना मानना किसी को पराया मानना, किसी को मित्र मानना किसी को शत्रु मानना, ये सब अपने ही चित्त को जलाने के निमित्त हैं। एक अखण्ड परमात्म-सत्ता को चीर-फाड़ करने का यह पाप है। अपने ही पैर पर कुठाराघात करके अपना नाश करने के बराबर है।

किसी से भी राग-द्वेष करने से शक्ति अपनी क्षीण होती है। अतः संत-पुरुषों का संग करके उनके वचनों को बराबर समझो , खूब आत्म-चिन्तन का अभ्यास करो। ठीक अभ्यास करोगे तो राग-द्वेष पर विजय पा लोगे। राग-द्वेष पर विजय पाने से मन शांत होता है। मन शांत हुआ, चित्त की भटकान कम हुई तो अपनी शक्तियों का बिखराव रुक जायगा। अपना आत्मबल जग जाएगा। एक बार आत्मबल जग जाएगा फिर अन्य विभूतियाँ अपने आप पीछे पीछे आने लगेंगी। जैसे हाथी के पदचिह्न में और सब प्राणियों के पदचिह्न समा जाते हैं ऐसे ही आत्मबल में और सब बल समा जाते हैं। फिर उनके लिए कोई अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ेगा।

अभ्यास का ठीक तरीका अगर नहीं आया तो राग-द्वेष निर्मूल नहीं हो पायगा। 25-50 साल तक भी एकान्त में रहा, समाधि की फिर आ गया भीड़ में तो राग-द्वेष चालू हो गया, वैर

चालू हो गया... तो इतने सारे वर्षों में एकान्तवास का क्या लाभ हुआ ? कई वर्ष लगाकर पाया और कुछ ही दिनों में खो दिया तो कहना पड़ेगा कि ठीक से पाया ही न था।

जहाँ राग-द्वेष का प्रसंग नहीं वहाँ शांत रहे, जहाँ प्रवृत्ति नहीं वहाँ शांत रहे तो यह चोरों की शांति है। निवृत्ति में तो चोर भी शांत रहता है। जो प्रवृत्ति के बीच शांत रहे उसकी बलिहारी है। वेदान्त का अभ्यासी ही यह कर सकता है। परीक्षाएँ पास करके प्रमाणपत्र पाने के लिए जो किताबों का अभ्यास करता है उसकी बात नहीं है। वेदान्त के सिद्धान्तों को आचरण में और जीवन में उतारने का जो अभ्यास करता है, अपने आत्स-स्वरूप की खोजबीन करता है ऐसे ईमानदार भाग्यवान साधक के अभ्यास की यह बात तो रही है।

योग आत्म-सिद्धि के भवन का एक सोपान मात्र है। योग एकाग्रता जरूर लाता है पर राग-द्वेष की संपूर्ण निवृत्ति नहीं कराता। मैं अच्छे-अच्छे योगियों को जानता हूँ जिनका राग-द्वेष पूरा निवृत्त नहीं हुआ। समाधि में रहे तो समता थी और व्यवहार में आये तो राग-द्वेष चालू। व्यवहार पूरा हुआ फिर भी राग-द्वेष की सत्यता नहीं गई क्योंकि समाधि काल में राग-द्वेष दब गया था, बाधित नहीं हुआ था। ज्ञानी की दृष्टि में अपने आत्म-स्वरूप के सिवा जो कुछ है वह सब प्रपंच बाधित हो जाता है।

वशिष्ठजी महाराज बहुत ऊँची बात करते हैं-

"हे राम जी ! संतों का संग करके फिर आत्म-विचार का अभ्यास करो।"

आत्म-विचार का अभ्यास करोगे तभी राग-द्वेष छूटेगा। अभी तो राग-द्वेष का अभ्यास है, तेरे मेरे का अभ्यास है, भले बुरे का अभ्यास है, अपने-पराये का अभ्यास है। इस अभ्यास को हटाने के लिए आत्म-अभ्यास करो।

आत्म-विश्वास क्या है ? जब एकान्त मिले तो ध्यान और तत्त्वविचार करो। व्यवहार में आओ जो समता का अभ्यास, भला आवे बुरा आवे, लाभ हो हानि हो, मान मिले अपमान हो जाय, यश हो अपयश हो..... 'चलो ठीक है.... यह सब होता रहता है' ऐसा करके परिस्थितियों से निर्लेप रहो अपना कर्त्तव्य-कर्म पूरी कुशलता से करते हुए भी पूरे निर्लेप।

अच्छा और बुरा, देव दानव..... यह सृष्टि का खेल है, अपनी इन्द्रियों का खिलवाड़ मात्र है। सब होने दो। सब में सोऽहं की सुहास मिलाते जाओ, चित्त शांत और निर्दोष होता जाएगा। राग-द्वेष को पकड़े रहोगे तो अपना सत्यानाश कर लोगे।

व्यवहारकाल में 'कौन ऐसा है' यह थोड़ा-सा ध्यान रखा, कोई हर्ज नहीं, पर गहराई में सदा एकरस। सागर में देखो तो ऊपर कई तरंगे दौड़ रही हैं, परस्पर टकरा रही हैं, मर-मिट रही हैं, फिर उठ रही हैं, भाग रही हैं, कोई छोटी कोई मोटी, कोई ऊँची कोई नीची। सागर के पानी में कहीं फेन कहीं बुदबुदे, कहीं जल शांत कहीं चक्राकार घूमता हुआ। लेकिन सागर के अन्तराल में, सागर की गहराई में कोई हलचल नहीं, सब शांत, निस्तरंग, एकरस। सागर के किनारे खड़ा

रहकर देखने वाला सोच ही नहीं सकता कि सागर के अंतराल में कितनी गहन शांति निहित हैं। ऐसे ही सामान्य संसारी अज्ञानी जन ज्ञानी के अंतराल को समझ ही नहीं सकता।

घोर प्रवृत्ति के बीच भी ज्ञानी भीतर से राग-द्वेष से रहित अपनी सच्चिदानन्दघन ब्राह्मी स्थिति में दृढ़ होते हैं। युद्ध के मैदान में श्री कृष्ण की बँसी मस्ती से बज सकती है। ऐसी अवस्था प्राप्त हो सकती है सत्संग से। सत्संग माने सत् असत् विवेक से जो सत् वस्तु आत्मा का बोध करा दे।

कभी सत्संग का त्याग नहीं करना चाहिए। आदर से सत्संग सुनना चाहिए। सत्यस्वरूप परमात्मा की शाश्वतता और जगत की नश्वरता का बार-बार विचार करना चाहिए। राग-द्वेष के संस्कारों को चित्त से उखाड़ते रहना चाहिए। यही पुरुषार्थ करना है।

जरूरी नहीं कि तुम्हारे कहने के अनुसार, तुम्हारी इच्छा के अनुसार सारी सृष्टि चलने लग जाय। तुम्हारे कहने से अनुसार तुम्हारा बेटा भी नहीं चलेगा तो दूसरों की क्या बात है ? अरे तुम्हारा शरीर और मन भी तुम्हारे कहने के अनुसार नहीं चलता तो दूसरों पर क्या दावा करोगे ? फिर भी सृष्टि में सब यथा योग्य हो रहा है।

फरियाद मत करो कि यह दुर्जन ऐसा करता है वैसा करता है। सब दुर्जन दुर्जनता छोड़े दे यह संभव नहीं, सब सज्जन ही बने रहें यह भी संभव नहीं। सृष्टि ही नहीं चलेगी। सज्जन भले सज्जनता में डटे रहने का पुरुषार्थ करें, दुर्जन भले ठोकर खा-खाकर सज्जन बने लेकिन तुम तो सज्जनता दुर्जनता दोनों का पार हो जाओ।

सज्जनता और दुर्जनता, ये अन्तःकरण के धर्म हैं। इससे भी पार अपने सोऽहं स्वरूप में जग जाओ। 'यह संसार खेल मात्र है, स्वप्न मात्र है, मैं आत्मा हूँ....' ऐसा विचार और अभ्यास करके अपने सोऽहं स्वरूप में आ जाओ। यही आत्म-अभ्यास करना है।

साधक का यह अभ्यास दृढ़ नहीं है, आत्म-अभ्यास को भूल जाता है तो संसार खोपड़ी में चढ़ बैठता है। चिन्ता दिल-दिमाग का कब्जा ले लेती है। भय पीठ पर सवार हो जाता है। काम का कीड़ा भीतर घुस जाता है और बुद्धि को कुरेदने लगता है।

आत्म-अभ्यास कमजोर है इसीलिए सारी मुसीबतें आ जाती हैं। आत्म-अभ्यास दृढ़ है तो मुसीबतें दूर भागेगी। जहाँ पोल होती है वहीं बजता है।

'ऐसा-ऐसा होता है न तो मेरी खोपड़ी हट जाती है.....।' किसकी खोपड़ी हट जाती है जरा जाँचो। आत्मा की हटती है ? कभी नहीं। तो क्या शरीर की हटती है ? वह तो बेचारा जड़ है। तो किसकी हटती है ?

वह जो भीतर बैठा है न, पिशाच (अहंकार) ! उसकी खोपड़ी हटती है। आत्म-अभ्यास करके उसको भगाया नहीं है, ठोस अहं को पिघलाया नहीं है इसलिए उसकी हट जाती है।

दूसरी गलती यह है कि हटती उसकी है और मान लेते हैं कि मेरी हटती है। यह पक्का हो गया। 'मैं शरीर हूँ.... मैं मन हूँ.. मैं अहंकार हूँ....' यह उल्टा अभ्यास पक्का हो गया है।

अपना 'मैं पना उधर से उठाकर आत्मा में रख दो, हो गई शांति। अपमान हुआ, हानि हुई तो खोपड़ी हटे मेरा क्या बिगड़ता है ? हटेगी तो मन की हटेगी, अहंकार की हटेगी, मैं तो सोऽहं स्वरूप हूँ। उसकी हटेगी तो लाल-पीला होगा, उसकी इज्जत बिगड़ेगी, वह मार खाएगा.... मैं तो सबका साक्षी, दृष्टा, सबसे निर्लेप, शांत स्वरूप हूँ..... ॐ आनन्द.... ॐ शांति.... परम शांति।' ऐसा अभ्यास करते हुए पा लो राग-द्वेष पर विजय।

ऐसी बढ़िया युक्तियाँ मिल रही हैं फिर भी जो उसको आजमाकर आत्म-अभ्यास न करे तो भाग्य उसका।

आत्म-अभ्यास में रूचि नहीं है न, इसीलिए सारी परेशानी है। रूचि हो तो परमात्मा को पा लेना, हर परिस्थिति में सम रहना कोई कठिन बात नहीं है।

व्यवहार विषम करने की तो छूट मिल ही रही है। केवल चित्त में समता लाना है। श्रीकृष्ण गीता में कह रहे हैं-

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।

'वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी समदर्शी होते हैं।'

(गीताः 5.98)

यहाँ भगवान ने **समदर्शिनः** कहा है, **समवर्तिनः** नहीं कहा। समदर्शन करने को कहा, समवर्तन करने को नहीं कहा। व्यवहार में सबके साथ वर्तन तो अलग-अलग यथा योग्य करना होगा। गाय को घास डालना होगा, कुत्ते को रोटी का टुकड़ा फेंकना होगा और ब्राह्मण को आदर से घर में आसन पर बैठाकर भोजन परोसना होगा।

हाथी जितना खाता है उतना भोजन कुत्ते को दोगे तो उसके बोझ से ही दब जाएगा। जो ब्राह्मण को परोसा जाता है वह हाथी को थोड़े ही खिलाओगे ! माँ को चरण छूकर प्रणाम किया जाता है पत्नी को थोड़े ही करोगे !.... और जो व्यवहार पत्नी से होता है वह अन्य किसी से भी नहीं होता। नारीत्व में तो माँ, बहन, भाभी, सासु, चाची, मामी, पत्नी - ये सब समान हैं लेकिन उनके साथ व्यवहार में विभिन्नता रहेगी ही।

व्यवहार में विषमता होते हुए भी सब में एक ही आत्म-स्वरूप अखण्ड रूप से बस रहा है यह दृष्टि बनी रही तो आ गई समता, हो गया समदर्शन। इतनी जरा-सी तो बात है। .... और क्या है ?

गीता में भगवान आगे कहते हैं-

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।।

'जो पुरुष एकी भाव में स्थित होकर संपूर्ण भूतों में आत्मरूप से स्थित मुझ सच्चिदानन्द घन वासुदेव को भजता है वह योगी सब प्रकार से बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।'

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।

'हे अर्जुन ! जो योगी अपने भाँति संपूर्ण भूतों में सम देखता है, सुख और दुःख को भी सबमें सम देखता है वह योगी परमश्रेष्ठ माना गाया है।'

(भगवद् गीताः 6.31)

जैसे मनुष्य अपने मस्तक, हाथ, पैर और गुदा आदि के साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र और म्लेच्छादिकों का-सा बर्ताव करता हुआ भी उनमें आत्मभाव अर्थात् अपनापन समान होने से उसके सुख और दुःख को समान ही देखता है, वैसे ही सब भूतों में देखना यह 'अपनी भाँति सम देखना' का अर्थ है।

इस प्रकार समदृष्टि हो गई, समदर्शन हो गया हो तो गये सिद्ध। समाधि हुई तो हो गये योग-सिद्ध और व्यवहार काल में समता टिक गई तो हो गये योग-सिद्ध के भी बाप.... ज्ञान-सिद्ध।

एक बार ज्ञान सिद्ध हो जाता है तो फिर पतन नहीं होता। योग-सिद्ध को तो व्यवहार में विषमता सच्ची लगती है। जब तक ज्ञान सिद्ध नहीं बनता तब तक काम पूरा नहीं होता। योग-सिद्ध को अभी ज्ञान-सिद्ध होना बाकी रहता है। तुम योग-सिद्ध हुए बिना, आत्म-अभ्यास करके सीधे ज्ञान-सिद्ध भी हो सकते हो।

विषम व्यवहार होते हुए भी हृदय की शांति बनी रहे। हृदय शिला की तरह स्थिर बना रहे। जो होता है सो होता है.... सब माया में होता है.... मुझ चैतन्यघन आत्मा में कोई फर्क नहीं पड़ता..... सोऽहं...... शिवोऽहं..... बाहर से भय का प्रसंग आवे तो भी भय न लगे। चोट कभी लग भी गई तो आभास मात्र, मानो पानी में लकीर। बहते पानी में लकीर पड़ी और अपने आप ठीक भी हो गई।

आत्म-अभ्यास की जरूरत है। अभ्यास करने में तत्पर नहीं तो गिरि-गुफा में जाकर भी क्या करोगे ? यह अभ्यास तो चलते-फिरते भी करना है। गिरि-गुफा का एकान्त मिल जाय तो सौभाग्य है, नहीं तो अपने घर के कमरे को साधना-मंदिर बना दो। कमरे की दीवारें और छत की हल्की-सी नीलवर्णी या पीतवर्णी हो तो लाभप्रद है। उसका रंग अति गहरा न हो। कमरे में प्राचीन योगियों के, तेजस्वी साधकों के चित्र, साधना में उत्साह-प्रेरक सूत्र आदि लगे रहें। जिस प्रकार की साधना करना चाहते हो तदनुकूल ही वहाँ ग्रन्थ होने चाहिए, इतर नहीं।

ये सब सुविधाएँ हो जाय तो अच्छा है। नहीं तो जो भी तुम्हारे पास कमरा है या कमरे का कोना है उसी में अपनी साधना में लग जाओ। सुविधायों का इन्तजार मत करो।

हो सके तो कमरे में और कोई व्यक्ति प्रविष्ट न हो। तुम्हारी तरह जो कोई साधना में हो वे कभी आ जाएं तो कोई हर्ज नहीं। साधना में जो न्यून हैं उनका प्रवेश उस कमरे में न हो तो अच्छा है।

कमरे में ताजे पुष्प होना भी सहाय रूप बनता है। कमरे को धूप-दीप से महका दो। धरती पर कुशासन अथवा गरम कम्बल पर सफेद वस्त्र बिछाकर साधन-भजन करो। धरती पर ही बिस्तर बिछा कर सोओ। कम से कम खाओ। इन दिनों में रेडियो, टी.वी. से अपने को बचाओ।

लगन से थोड़े सप्ताह ही उत्साह से की हुई साधना धारणा शक्ति को विकसित कर देगी। तन और मन का स्वास्थ्य प्राप्त होने लगेगा। बुद्धि का विकास होने लगेगा। साक्षात्कार तक पहुँच हो तो तुमको हजार नमस्कार है। थोड़े भी उन्नत हो जाओगे तो भी तुम्हारे कुटुम्ब का कल्याण है।

मन की कल्पना से ही मित्र-शत्रु, अपना पराया दिखता है। सारा संसार मनःकल्पित है इसीलिए आदरपूर्वक श्रेष्ठ व्यवहार करना चाहिए, सदाचारयुक्त व्यवहार करना चाहिए, चित्त को परहित परायण रखना चाहिए। फिर भी कहीं इधर-उधर से ऐसा वैसा प्रतिभाव मिले तब समता के सिंहासन पर बादशाह बनकर बैठ जाना चाहिए।

जैसे कोई साफ-सुथरे कपड़ेवाला भद्रपुरुष कहीं गन्दी बस्ती में जाता है, कहीं भूमि पर बैठना पड़ता है, कपड़ों में धूल लग जाती है, तब झाड़ लेता है, फिर से ठीक-ठाक कर लेता है। ऐसे ही जब चित्त में मेरे-तेरे का, अच्छे-बुरे का, मान-अपमान का, सुख-दुःख का धब्बा लग जाय तब जगत सब सपना है.... हरि ॐ तत्सत् और सब गपशप..... करके समता के सिंहासन पर पहुँच जाना चाहिए।

लड़के कबड्डी खेलते हैं। आमने सामने दो टुकड़ियाँ खड़ी रहती हैं। एक लड़का 'कबड्डी.... कबड्डी... कबड्डी.... करते हुए सामने वाले दल में जाता है। उनको छूकर वापस आना है। सामने वाले उसको पकड़ लेने को तत्पर हैं , छूकर वापस जाने नहीं देना है। खिलाड़ी कभी पकड़ा जाता है, कभी गिर जाता है , कभी लोट-पोट हो जाता है। ऐसा होने पर वह खेल छोड़ देता है क्या ? नहीं। गिर जाता है तो फिर से खड़ा हो जाता है , अपनी टुकड़ी से खेलने के लिए वापस चला जाता है।

इतना तो बच्चे भी जानते हैं। तुम भी व्यवहार का खेल खेलते अपनी टुकड़ी में आ जाओ, ब्रह्मज्ञान में आ जाओ। कबड्डी का खेल कुछ समय के बाद खत्म हो जाता है। खिलाड़ीयों में कोई राग-द्वेष नहीं रहता। खेल में सब होता रहता है, बाद में भूल जाते है।

ऐसे ही अच्छी तरह व्यवहार किया, फिर खेल खत्म करके सोऽहं स्वरूप में आ जाओ। इस प्रकार परम कल्याण होता है। अपना कल्याण करने की तत्परता होनी चाहिए। करना क्या है, केवल सजग होना है।

चलने की प्रकिया में क्या होता है ? तुम एक पैर आगे बढ़ाते हो..... फिर पीछे वाला पैर उठाकर पहलेवाले से भी आगे रखते हो.... पहला पैर पीछे हो जाता है तो उसे उठाकर फिर आगे रखते हो। इस प्रकार एक-एक कदम करके तुम गति करते हो। बचपन से लेकर आज तक न जाने कितने ही कि.मी. भूमि तुम्हारे पैरों तले निकल गई होगी, कोई हिसाब नहीं।

इसी प्रकार कितनी ही परिस्थितियाँ, कितने ही अच्छे-बुरे प्रसंग आपके मन के नीचे से गुजर गये होंगे कोई पता है ? वह सब गुजर गया फिर भी तुम हो। आकर चला जाने वाला सब मिथ्या.... उसका साक्षी सत्य। तुम वही साक्षी हो। ऐसे ज्ञान की आँख सदा खुली रहनी चाहिए। जो दिखता है वह सब ब्रह्ममय है। आत्मस्वरूप है। जगत है ही नहीं, ब्रह्म ही जगत रूप होकर दिखता है। जैसे स्वप्न आता है तो कुछ बनता नहीं, ऐसे ही भ्रांति से दिखता है। ठीक वैसे ही अपने शरीर, इन्द्रियाँ, अन्तःकरण सहित यह पूरा विश्व स्वप्न मात्र है। यह जान लेना ही ज्ञान है।

जैसे भभकती आग में सूखा तिनका गिरता है तो आगमय हो जाता है ऐसे ही ज्ञानी की दृष्टि में जो आता है वह ब्रह्ममय हो जाता है। इसीलिए सदा सुखी रहते हैं। उनको कोई कम प्रवृत्ति होती है क्या ? सिर खपाने वाले कई लोग उनके पास आ जाते हैं, फिर भी आनन्द से जीते हैं।

आत्मज्ञान से सारी शक्तियों का विकास होता है। जैसे वसन्त ऋतु में स्वाभाविक ही फूल पत्ते खिल उठते हैं वैसे अद्वैत ज्ञान से शांति, सामर्थ्य खिलने लगता है। जैसे पतझड़ में पत्ते गिर जाते हैं ऐसे राग-द्वेष से शांति और शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। जितना व्यवहार में वेदान्त है उतना जीवन उन्नत है। अतः आत्मज्ञान पा लो, ब्रह्मज्ञान पा लो। सारी दुनियाँ के बाबा बन जाओगे। मानव तो क्या देवता भी ब्रह्मज्ञानी के दर्शन की अभिलाषा रखते हैं।

राग-द्वेष रहित पद में विश्रांति पाने से शातिं देने का सामर्थ्य आता है।

सुभाषचन्द्र बोस ने आनन्दमयी माँ से पूछा थाः "माँ ! देश की सेवा करते-करते भी आत्मशांति मिल सकती हैं न ?"

"हाँ, मिल सकती है पर भीतर से देश की सेवा करो, भीतर ज्यादा रहो।" माता जी कहा था।

कोई भी सेवा करने से पहले अपने भीतर गोता मारो। सेवा पूरी कर लेने के बाद भी अपने भीतर चले आओ, तो सेवा बढ़िया हो जाएगी। सेवा करते-करते भीतर का संपर्क नहीं रखोगे तो वहाँ भी राग-द्वेष, पार्टी-बाजी, दलबन्दी हो जाएगी और सेवा सेवा नहीं रहेगी, मुसीबत बन जाएगी। नाम तो सेवा का होगा पर पद की लालच सताती रहेगी। अपमान की चोट हृदय को झकझोरती रहेगी। मान की अभिलाषा दिल को लालायित करती रहेगी। दिल दिलबर से दूर होता जाएगा।

आदर सहित आत्मविचार करना चाहिए। आदर सहित सत्संग सुनना चाहिए। आदर सहित उसका मनन करना चाहिए।

पश्चाताप करने से पाप कटते हैं पर सतत पश्चाताप करे और आत्म-चिन्तन न करे तो आगे बढ़ने की शक्ति ही नष्ट हो जाएगी। जो अपनी गलती के लिए पश्चाताप नहीं करता उसकी गलती तो कभी सुधरती ही नहीं। गलती करके जो पश्चाताप करता है और पश्चाताप करते-करते अपने को हीन मान बैठता है, अपने को कोसने में रूकता नहीं उसके उत्थान का मार्ग भी रूंध जाता है।

गलती का पश्चाताप भी हो, साथ ही साथ आत्मविचार भी हो, आत्म-अभ्यास भी हो, महान् तत्त्व में जग जाने का दृढ़ संकल्प भी हो तो हजार-हजार बार फिसल जाने पर भी फिर से उठकर आगे बढ़ सकते हो।

सदा दिवाली संत की आठों प्रहर आनन्द।
अकलमत्ता कोई उपजा गिने इन्द्र को रंक।।

एक बार ज्ञान के लिए तड़प पैदा हो जाये। बस, काम बन जाएगा। तड़प नहीं है तो मिला हुआ ज्ञान भी ढोल देते हैं। कच को एक बार उपदेश देकर गुरुजी चले गये तो कच लग गया आत्मज्ञान में, बोध हो गया।

जो लोग व्यर्थ की चर्चा करते हैं उनकी खोपड़ी में जगत खड़ा हो जाता है, जगत की सत्यता दृढ़ हो जाती है। राग-द्वेष की भट्ठी चालू रहती है। जिनको सत्संग में रूचि नहीं है तो समझना चाहिए की उनका पुण्य कमजोर है।

जब तक आत्मपद में स्थिति नहीं हुई है तब तक यत्न करते रहो, आत्माभ्यास करते रहो। एक बार ठीक से स्थिति हो गई फिर कुछ कर्तव्य नहीं है, कोई विधि नहीं है, कुछ निषेध नहीं है। ज्ञानी के लिए यह करना..... यह नहीं करना.... ऐसे विधि-निषेध नहीं रहते। हाँ.... एक बार आत्मज्ञान हो जाय।

जब तक आत्मज्ञान न हो तब तक तत्परता से, संयम से सदाचार और सच्चाई से सेवा करो, साधना करो।

जब तक चित्त में अज्ञान है तब तक चाहे दुनियाँ के किसी भी कोने में चले जाओ , दुःख मौजूद रहेगा ही। अज्ञानी सब जल रहे हैं। वे कल्पना की लकड़ियाँ जलाते हैं , कल्पनाओं का केरोसीन डालते हैं, कल्पना की दीयासिलाई जलाते हैं। उसी कल्पना की आग में अज्ञानी अपने आपको भूनते रहते हैं।

दुनियाँ में दुःख है ही नहीं। अज्ञानी दुःख बनाते हैं, मूर्ख लोग दुःख बनाते हैं। एक ही ब्रह्म में 'यह मेरा यह तेरा, यह अपना यह पराया, यह अच्छा या यह बुरा, यह सच्चा यह झूठा...' करके अज्ञानी खींचातानी करते हैं, राग-द्वेष की आग जलाते हैं। फिर ज्ञान कैसे होगा ?

अज्ञानी जो भी बात करेगा, जगत की सत्यता दिमाग में घुसेड़ेगा। उस कमबख्त की बात राग की होगी या द्वेष की। घर-बार छोड़कर भी जो साधना में लगे हैं वे भी सावधान नहीं रहते। आपस में मिलकर गपशप लगाते रहते हैं।

"अरे भाई ! क्या कर रहे हो ?"

"कुछ नहीं, जरा बात कर रहे थे।"

बात क्या कर रहे थे, अपना सत्यानाश कर रहे थे। संसार की सत्यता के जो घाव पहले से ही चित्त में पड़े हैं उन्हीं घावों को खुजला रहे थे। जो बीत गया वह स्वप्न..... जो बीत रहा है वह भी स्वप्न.... और जो बीतेगा वह भी स्वप्न हो जाएगा.... अपना आत्मा-परमात्मा ही सत्य है। उसी में डाक्टर ज्ञाननिष्ठ हो जाना चाहिए कि 'इसको ठीक करो, उसको ठीक करो, अपनी पार्टी मजबूत करो.... ऐसी बातों में लगना चाहिए ?

अज्ञानी तो गुरु के द्वार पर जाएँगे न, तो वहाँ भी अपना अज्ञान मजबूती से पकड़कर रखेंगे। अब गुरु भी क्या करें ? अरे अभागे ! जो हो गया सो हो गया। अब आगे कदम रखो। जितना ज्यादा अज्ञानी उतनी ज्यादा उसकी पकड़ होती है। जितना अज्ञान गहरा उतनी ज्यादा उसकी पकड़ होती है। जितना अज्ञान गहरा उतनी पकड़ गहरी। पकड़ रखना है तो सच्चाई की पकड़ रखो। 'हम झूठ नहीं बोलेंगे, पाप नहीं करेंगे, काम-विकार में नहीं गिरेंगे' ऐसी पकड़ रखो और पास हो जाओ। ऐसी पकड़ तो रखते नहीं और 'उसने ऐसा किया... वैसा किया.... वह ऐसा बोला.... वैसा बोला.....' करके जलते भुनते रहते हैं राग-द्वेष में। अज्ञान को पकड़ा है दसों उँगलियों से, ज्ञान की बात को नहीं पकड़ते।

लोग पकड़ने में तो होशियार हैं लेकिन क्या पकड़ना चाहिए इसका ख्याल नहीं है। बस इतना ही अज्ञान है। कोई राग को पकड़ता है कोई द्वेष को पकड़ता है, कोई रुपये पैसे नौकरी धंधा व्यापार को पकड़ता है कोई मान-अपमान को पकड़ता है कोई लाभ-हानि को पकड़ता है। अरे अपने ज्ञानी गुरु के ज्ञान को पकड़ो और हो जाओ सब दुःखों से पार। सच्चे ब्रह्मज्ञानी गुरु के वचनों में श्रद्धा टिक गई तो छः महीना क्या-क्या, एक दो तीन क्षण में भी काम बन जाए।

हम चालीस दिन का अनुष्ठान करके गये थे। सदगुरुदेव के श्रीचरणों में और कुछ क्षणों में काम बन गया।

असोज सुज दो दिवस संवत बीस इक्कीस।
मध्याह्न ढाई बजे मिला ईश से ईश।।
देह सभी मिथ्या हुई जगत हुआ निस्सार।
हुआ आत्मा से तभी अपना साक्षात्कार।।

ऐसा नहीं कि रोज-रोज गुरु के पास जाकर सिर खपावे और साधना में ठोस परिणाम नहीं लाये।

इतना ही समझना है कि एक ही परमात्मा है और वह एक ही अनेक रूप हो कर बैठा है। जैसे वृक्ष में एक ही रस अनेक डालियाँ, फूल, पत्ते, फल आदि बना बैठा है। उसी रस पर नजर केन्द्रित करो। डाली-पत्तों पर नजर रहेगी तो मरते रहोगे, सड़ते रहोगे, पचते रहोगे, राग-द्वेष में जलते रहोगे। कोई निकालने वाला भी नहीं मिलेगा।

वृक्ष में एक ही रस तना बैठा है, डाली बना बैठा है, पत्ते बना बैठा है, फूल बना बैठा है, फल बना बैठा है। ऐसे ही एक ब्रह्म यह सब सृष्टि बना बैठा है। किससे राग करोगे, किससे द्वेष करोगे ? किसकी किससे तुलना करोगे ? यह बड़ा.... यह छोटा, यह अच्छा... यह बुरा, यह शत्रु.... यह मित्र, यह सच्चा... यह झूठा, यह सब अपने अन्तःकरण की हल्की स्थिति में दिखता है। चलो, व्यवहार में थोड़ी देर ऐसी स्थिति आ गई, कोई बात नहीं, फिर तुरन्त अपनी ऊँची स्थिति में आ जाओ। अज्ञानी को कहीं न कहीं दुःख बनाना आता है। जगत का चिन्तन खोपड़ी में भर देता है। कोई कैसा भी है, कुछ भी करता है, तू उसका चिन्तन अपनी खोपड़ी में नहीं भरता है भैया ! वे लोग तो मजे से नींद ले रहे हैं और तू उनका चिन्तन करके अपनी खोपड़ी को तपा रहा है ? वे लोग झूले पर झूलते हुए आइसक्रीम खाते होंगे और तू उनकी निन्दा करके अपने दिल का चैन हराम कर रहा है नादान !

किसी का हित करने की भावना से थोड़ी देर कुछ सोच-विचार कर लिया, बातचीत कर ली यह अलग बात है पर किसी भी निमित्त से अपने दिल में राग-द्वेष की भट्ठी नहीं जलानी चाहिए। राग-द्वेष से परे होने का ही पुरुषार्थ करना है।

विनोबा भावे के माता-पिता थे रखुनाई और नरहरि भावे। उनका स्वभाव था आवश्यकतावाले विद्यार्थियों को सहायभूत होना। वे एक-दो विद्यार्थी को अपने घर रखते, खिलाते-पिलाते, उनकी पढ़ाई में हर तरह से सहाय करते। माता रखुनाई बच्चों की बड़ी सेवा करती। अपने पराये सब बच्चों से समान भाव से स्नेह करती। घर में रहे हुए विद्यार्थी को अपने बच्चों से भी अधिक सँभालती। कभी रोटियाँ अधिक बन जाती, सबका भोजन हो जाने के बाद भी बच जाती तो दूसरे टाईम में उनका उपयोग स्वयं कर लेती। खुद ही वे बासी रोटियाँ खाती और अधिक ज्यादा होती तो विनोबा को देती पर विद्यार्थी को तो गरमागरम ताजी रोटी ही खिलाती। उन्हें कभी बासी भोजन नहीं देती। विनोबाजी यह देखते रहते और सोचते रहते।

एक दिन विनोबा जी से रहा न गया। माता जी से कह ही दियाः

"माँ ! तू कहती है कि सबमें एक ही भगवान है, सदा समदृष्टि से रहना चाहिए। किसी से राग-द्वेष नहीं करना चाहिए। अब तू ही विषमता करती है। विद्यार्थी को तो गरम गरम ताजी ताजी रोटियाँ खिलाती हैं और जब भी बासी रोटियाँ बचती हैं तो तू मुझे ही देती है। उसको नहीं देती। हम लोगों के साथ ऐसी विषमता रखती है और बोलती है सबमें एक भगवान है और समता रखना चाहिए।"

माँ रखुनाई ने कहाः "बेटे ! सही बात है तेरी। मैं विषमता करती हूँ क्योंकि अभी मेरा मोह गया नहीं। तुम मुझे अपने बेटे दिखते हो और उस विद्यार्थी में मुझे अपना इष्ट परमात्मा दिखता है। जिस दिन तुम भी मुझे अपने बेटे नहीं दिखोगे, परमात्मा होकर दिखने लगोगे तब तुमको भी सदा गरम-गरम रोटियाँ ही खिलाऊँगी, बासी कभी नहीं खिलाऊँगी।"

कैसी अदभुत समता थी माता रखुनाई की ! तभी तो विनोबा भावे जैसे संत पुत्ररत्न वहाँ अवतरित हुए।

अपने वालों से न्याय और सामने वालों से पूरी उदारता।

जिसको आप बुरा समझते हो उसके साथ उदारता का व्यवहार करो। जो ऐसा वैसा दिखता है उसमें भी गुण होंगे ही। उसके गुण देखकर प्रशंसा करो। उसके दोषों को भूल जाओ। अपने आप चित्त में शांति रहने लग जाएगी। राग-द्वेष को पुष्ट किया तो सब ध्यान-भजन चौपट। एक ही परमात्मा को खण्ड-खण्ड करके अच्छे-बुरे मानकर देखते रहोगे तो चित्त में क्षोभ बना रहेगा, ईर्ष्या और जलन होती रहेगी। अन्तःकरण अशुद्ध बनेगा।

सेवा करो, जप करो, अन्तःकरण को शुद्ध करो, फिर एक दूसरे से राग-द्वेष करो तो साधना की हो गई सफाई। जमा उधार दोनों बराबर। कमाई शून्य।

तुलसीदास जी कहते हैं-

तन सुकाय पिंजर कियो धरे रैन दिन ध्यान।
तुलसी मिटे न वासना बिना विचारे ज्ञान।।

ज्ञान का विचार करना ही पड़ेगा। सुने हुए सत्संग का खूब मनन करना पड़ेगा। जब एकान्त में रहते हो, साधना करते हो, राग-द्वेष पैदा करने वाला कोई प्रसंग नहीं है तब तो कोई समस्या नहीं है, चित्त में शांति ही शांति है। पर जब राग-द्वेष पैदा करने वाले प्रसंग उपस्थित हों तब ज्ञान का उपयोग करो। सत्संग के वचनों को याद करके झाड़ दो उस कचरे को। चित्त को मलिन होते बचा लो।

हमारे गुरुदेव एक चुटकला सुनाया करते थे।

एक बार सागर में किस्ती चलाने वाले खारवे लोग अपने मुखिया के पास आये और बड़ाई करने लगेः

"देखो मुखिया जी ! हम लोग तो फलाने-फलाने भँवरों में भी नाव को ले जाते हैं और भँवरों को पार करके सुरक्षित वापस आ जाते हैं। और यह जो भीमा हैं न, वह डरपोक इन्सान है। वह नाव को लेकर कभी जाता ही नहीं। कैसा बुद्धु है !"

मुखिया बोलाः "तुम लोग भले भँवरों को पार करके आ जाते हो लेकिन तुम लोगों से ज्यादा होशियार तो यह भीमा है जो वहाँ कभी जाता ही नहीं। तुम तो कभी फँस जाओगे तो वापस आओगे ही नहीं, सदा के लिए चले जाओगे, नाव सहित सागर के अंतराल में गायब हो जाओगे जबकि इसको यह खतरा नहीं है।" सागर के अनुभवी मुखिया ने समझाया।

ऐसे ही निन्दा-स्तुति, राग-द्वेष के भँवर में जाना ही नहीं चाहिए। उसमें गिरकर वापस सँभल जाते हो तो ठीक है, धन्यवाद है पर कभी-कभी तो उसी भँवर में जीवन पूरा हो जाता है। कइयों का जीवन पूरा हो गया है। साधना भी करते हैं, भक्ति भी करते हैं, पूजा-पाठ भी करते हैं, ध्यान-भजन भी करते हैं, सेवा भी करते हैं, गुरु के शिष्य भी कहलाते हैं फिर भी राग-द्वेष के भँवर में जाने का शौख नहीं छूटा।

चले थे हरिभजन को ओटन लागे कपास।

जो जगत मिथ्या है, पल-पल में बदल रहा है, स्वप्न की नाईं गुजर रहा है उसकी सत्यता दिमाग में भर ली है और परेशान हो रहे हैं।

तुलसीदास जी रामायण में शिवजी के मुख से कहलवाया है किः

उमा कहौं मैं अनुभव अपना।
सत्य हरिभजन जगत सब सपना।।

सर्वत्र हरि ही एकरस व्याप रहा है यह जानना ही 'सत्य हरिभजन' का मतलब है। यह अगर जान लिया पूरे हृदय से तो सारे राग-द्वेष, आकर्षण-विकर्षण दूर हो जाएंगे। अपना सहज स्वभाव प्रकट हो जाएगा।

जीव परमात्मा की तरफ चलता है तो सब मुसीबतों से पार होता है और जगत की ओर जाता है तो सारी मुसीबतें उसे आ घेरती हैं। जगत के अभिमुख हुए कि उपाधि चालू।

"तो क्या करें ? जगत छोड़कर भाग जाएँ ?"

हाँ, बिल्कुल भाग जाओ।

"कहाँ जाएँ ? जंगल में चले जाएँ ?"

जंगल में भी तो जगत रहेगा। पृथ्वी होगी , हवाएँ होगी, तुम्हारा शरीर होगा, मन होगा। जगत कहाँ है ? जगत तुम्हारे मन में है। मन की बेवकूफी जगत को बढ़ाती है। बेवकूफी छोड़ो। बेवकूफी नहीं छोड़ी तो जंगल में जाकर भी क्या करोगे ? बेवकूफी भीतर है और उपचार बाहर हो रहे हैं। भीतर भूख और बाहर अन्न का लेप। भूख कैसे मिटेगी ?

बेवकूफी मिटाओ। दुःख देनेवाला जो अज्ञान है उस अज्ञान को मिटाओ। जगत की सत्यता चित्त से हटाओ। अपनी महिमा को जानो। गुरुदेव दिन-रात सुना रहे हैं, जता रहे हैं कि तुम आत्मा हो, ब्रह्म हो, जीव नहीं हो, शरीर नहीं हो, यह बात भीतर नहीं जाती और गुरुजी ने जरा सा डाँट दिया तो चेहरे पर साढ़े बारह बज गये ! बेवकूफी इतनी प्यारी लगती है कि बस.... जगत, जीव, शरीर और शरीर का मान-अपमान सच्चा है, ब्रह्मज्ञान सच्चा नहीं है। वेद, शास्त्र, भगवान और सदगुरु पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि तुम नित्य, मुक्त, शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यस्वरूप हो, यह बात याद नहीं रहती और किसी की गाली वर्षों तक याद रहती है।

सब देवी-देवता दिन-रात तुम्हारी महिमा गा रहे हैं, तुम्हारी असलियत का ध्यान कर रहे हैं, तुम्हारा चिन्तन कर रहे हैं वह आत्मा हो तुम। उसमें ठहर जाओ। यह बात नहीं जचती और हल्की बात एकदम गहरी उतर जाती है।

जब गाली मिले तो समझो यह हल्की बात है, अपमान हो तब समझो यह हल्की बात है। उससे प्रभावित मत बनो, परेशानी पैदा मत करो भीतर में। जब ब्रह्मज्ञान की बात सुनो तब समझो, यही सच्ची बात है, बड़ी बात है, महत्त्वपूर्ण बात है। गुरुदेव कह दें कि, संसार मिथ्या है, परमात्मा सत्य है, जगत ईश्वर की लीला मात्र है, सुख-दुःख इन्द्रियों का खिलवाड़ मात्र है, उसको देखने वाला, जाननेवाला आत्मा सत्य है। उसी आत्मा में डट जाओ, अपने आत्म-स्वरूप में टिक जाओ.... तो टिक जाना चाहिए। होता है इससे उल्टा। सत्य स्वरूप में प्रतिष्ठित सदगुरु की बात मानने जैसी नहीं लगती और संसार के खुशामदखोरों की बात तुरन्त गले उतर जाती है।

खुशामदखोर लोग तो तुम्हारा देहाध्यास मजबूत कर देते हैं। देहाध्यास तो गुरु ही तोड़ेंगे।

गुरु ऐसे आनन्द-स्वरूप, निर्मल आत्मदेव में प्रतिष्ठित हुए हैं कि राजी होना उनके लिए बिल्कुल सरल, सहज, स्वाभाविक है। नाराज होने में उनको परिश्रम करना पड़ता है। प्रयास करके क्रोध का आरोप अपने पर करना पड़ता है। तुम्हारा देहाध्यास तोड़ने के लिए उनको नाराज होना पड़ता है। कितना-कितना परिश्रम करके वे दयानिधि, परम हितैषी गुरुदेव तुम्हें उन्नत करते हैं ! लोगों के बीच ही साधक का अहं बदमाशी करता है, ठोस बन जाता है तो लोगों के बीच ही उसकी धुलाई करनी पड़ती है।

अहं का स्वभाव है कि जहाँ पुष्टि मिलती है वहाँ आगे रहता है, जहाँ थोड़ी पिटाई-धुलाई होती है वहाँ से खिसक जाता है। अहं की करतूतों से बचना चाहिए। आदरपूर्वक सत्संग सुनकर मनन-निदिध्यासन करके अपना काम बना लेना चाहिए। समय बड़ा तेजी से भागा जा रहा है।

निःश्वासे न हि विश्वासः कदा रूद्धो भविष्यति।
कीर्तनयमतो बाल्याद्धरेर्नामैव केवलम्।।

'श्वास का कोई भरोसा नहीं कब बन्द हो जाये। अतः बाल्यकाल से ही केवल हरिनाम का कीर्तन करना चाहिए।'

जनवरी 1964 में पंडित जवाहर लाल नेहरू को पक्षाघात हो गया। त्रिमूर्ति भवन में पलंग पर पड़े रहे। आनन्दमयी माँ में उनको आस्था थी , दर्शन करने की बड़ी इच्छा थी पर जा नहीं सकते थे। उन दोनों माँ दिल्ली में थीं। इन्दिराजी माँ के पास पहुँची और पंडितजी का हाल बताते हुए कहाः "माता जी ! उनको आपके दर्शन की बहुत इच्छा है पर उनके शरीर की हालत ऐसी है कि हम लोग उनको यहाँ आपके चरणों में ला नहीं सकते। आपको प्रार्थना करने आयी हूँ कि पंडित जी को आपके दर्शन हो जाय। कृपया..."

आनन्दमयी माँ नेहरू जी को जानती थी। श्रीमति कमला नेहरू की उत्कट भावना थी कि हमारे पंडितजी माताजी के सान्निध्य में जाएँ। कई वर्षों के बाद उनकी भावना फली थी। पंडितजी कभी-कभी माँ के दर्शन करने जाया करते थे। माँ जब देहरादून में थीं तब जवाहर लाल जी भी वहाँ गये थे। माता जी ने कमला नेहरू को रूद्राक्ष की जो माला दी थी वह माला लेकर एकान्त में माता जी के सामने बैठकर जप किया करते थे। उनकी भक्ति छुपी हुई भक्ति थे।

इन्दिरा जी की प्रार्थना सुनकर माता जी त्रिमूर्ति भवन में पधारीं। पंडित जी तो पक्षाघात की पीड़ा से ग्रस्थ थे। शरीर तो उनका ठीक नहीं था पर मन भाव से भर गया। माताजी ने अमृतमयी वाणी से सांत्वना दी, बात की। नेहरू जी का हृदय भर आया। आँखें भीग गई। देश के प्रधानमंत्री ! इतने बुद्धिमान व्यक्ति ! अपने निवास से बाहर जाना चाहते हैं फिर भी नहीं जा सकते। पक्षाघात से ग्रस्त विवश होकर पड़े हैं पलंग पर। शरीर, इन्द्रियाँ, नस-नाड़ियाँ कब धोखा दे देंगे, कोई पता है ? निकला हुआ श्वास वापस भीतर आएगा कि नहीं, कोई पता है ? हम कब लाचार और पराधीन हो जाएंगे, कोई पता है ? इसलिए अपना काम शीघ्रातिशीघ्र बना लेना चाहिए।

कोई-कोई ऐसे वीर मिल जाते हैं जो ज्ञानी की एक ही मुलाकात होती है और अमल करने लग जाते हैं।

भगवान बुद्ध... राजकुमार सिद्धार्थ.... एक बार देखा कि बीमारी आती है, वृद्धावस्था भी आती है और मौत भी अचूक आती ही है तो मौत से पहले सत्य को खोज लेना चाहिए। चल दिये सौन्दर्यवान पत्नी यशोधरा को और नवजात शिशु राहुल को रात्रि में सोते छोड़कर।

राजा भर्तृहरि को लग गई वैराग्य की चिनगारी और चल दिये राज-पाट छोड़कर।

यहाँ तो हमें हररोज ठोकरें लगती हैं फिर भी मोह नहीं जाता, ममता नहीं मिटती। अहंकार को मिटाने वाले गुरुओं के पास बैठना, उनकी हाँ में हाँ मिलाकर परम सत्य का साक्षात्कार कर लेना सबके बस की बात नहीं है।

खुशामद करने वालों के पास बैठना तो सबको अच्छा लगता है, वाहवाही में तो सब खुश होते हैं। कुत्ता भी पुचकारने पर पूँछ हिलाता है। तुमको भी किसी ने प्रशंसा करके खुश कर दिया तो क्या बड़ी बात हो गई ? खुशामद से खुश हो गये तो लालिया.... मोतिया से आगे तरक्की नहीं की। गालियाँ बरसती हों, अपमान हो रहा हो तब भी भीतर की शांति बनी रहे, तब समझना कल्याण है।

अभिमानं सुरापानं गौरवं रौरवस्तथा।
प्रतिष्ठा सूकरी विष्टा त्रिणी त्यक्तवा सुखी भवेत्।।

प्रतिष्ठा तो साधक के लिए सूकरी विष्टा है। अपने यश, मान, प्रतिष्ठा, प्रशंसा से तो दूर ही रहना चाहिए। अज्ञानी मूढ़ तो जहाँ प्रतिष्ठा मिलेगी, मान मिलेगा वहाँ भागेगा। अपमान करने वालों को दुश्मन मानेगा।

सच्चे जिज्ञासु साधक का स्वभाव होता है कि जहाँ मान मिले वहाँ से दूर भागे, जहाँ अपमान होता हो वहाँ चाह करके जाय। उसे जब आत्मज्ञान हो जाता है तो मान-अपमान सब खिलवाड़ लगता है। प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा सब खेल है, इन्द्रियों का धोखा है।

मायामित्रमिदं द्वैतम्।

ऐसा ज्ञानी का अनुभव होता है। ब्रह्मवेत्ता ज्ञानियों के अनुभव को अपना अनुभव बनाना चाहिए। आज्ञानियों की 'चें चें मैं मैं' में उलझेंगे तो रह जाएँगे। नौकरी-धंधा कर-करके पूरी जिन्दगी जिया तो क्या खाक जिया ? गुलाम बनकर जिया तो क्या खाक जिया ?

अपने शहनशाह पद में आओ। नौकरी करने वाला करता है, शरीर। हम तो आत्मज्ञान के मार्ग के पथिक हैं। यह सदा स्मरण रखो। व्यवहार-काल में सावधान रहेंगे। तभी काम बनेगा।

सूखी लकड़ी अच्छी तरह जलती है। गीली लकड़ी को जलाते है तो धुआँ करती है। क्योंकि उसमें पानी की उपाधि है। ऐसे ही अन्तःकरण में मोह-ममता, राग-द्वेष, काम-आसक्ति का जल भरा है तो जल्दी ज्ञान का प्रकाश नहीं होता, बोध नहीं होता। अन्तःकरण में मान-प्रतिष्ठा की उपाधि धुँआ करती है। अन्तःकरण को ज्ञान को वैराग्य की अग्नि से तेजोमय कर दो।

"अरेरे...! हमारे सब विरोधी हो गये....।"

अरे कहाँ विरोधी हुए हैं ? ब्रह्म के विरुद्ध कोई हो नहीं सकता, होने की चेष्टा करेगा तो टिक नहीं सकेगा। तुम्हारे विरुद्ध कोई हो नहीं सकता। अहंकार के विरुद्ध जरूर होगा, आत्मा के विरुद्ध कोई नहीं हो सकता।

"हमारे बहुत विरोधी हैं....।"

अच्छा हुआ। अहंकार का फुग्गा जल्दी फूटेगा। विघ्न-बाधाओं और दुश्मनों के बीच रहना चाहिए। दुश्मनों के बीच रहकर दुश्मनी नहीं बढ़ानी चाहिए अपितु ज्ञाननिष्ठा बढ़ानी चाहिए।

दुश्मनों के बीच नहीं रह सको तो फिर ज्ञानी गुरु के पास रहो। दुश्मनों के बीच तो खतरा भी है, राग-द्वेष बढ़ जाएगा, स्वभाव चिड़िया हो जाएगा।

रहो कहीं भी पर सत्संग का सहारा लेते रहो। जैसे कपड़े को बार- बार धोना पड़ता है ऐसे ही अन्तःकरण को भी बार- बार सत्संग-सरिता में नहलाकर निर्मल करना पड़ेगा। ज्ञान होने के बाद भी सत्संग सुहाता है।

जमनादास बजाज गये थे आनन्दमयी माँ के पास। बड़ी शांति मिली उनको। एक दिन के लिए गये थे फिर तार करके महात्मा गाँधी से अधिक रहने की इजाजत मंगवायी। गाँधी जी ने उनको भेजा था। गाँधी जी ने उन्हें कहा थाः

"तुम देश की सेवा करते हो, रचनात्मक कार्य करते हो और बोलते हो कि इससे शांति नहीं मिलती तो आनन्दमयी माँ के पास जाओ, शांति पाओगे। कमला नेहरू से आनन्दमयी माँ

की प्रशंसा सुनी है। मैं तुम्हें शांति नहीं दे सकता तो वहीं जाओ।" ऐसा करके गाँधी जी ने बजाज जी के वहाँ भेजा था।

एक दिन के लिए गये थे और एक महीने से भी ज्यादा रहे। फिर बजाज ने माँ से आज्ञा माँगी किः "माँ ! आप आज्ञा दो तो मैं आपके आश्रम के सामने गंगा किनारे एक प्लोट ले लूँ। कभी-कभी समय निकालकर शांति पाने को आया करूँ।"

माँ ने कहाः "अब तुम छः महीना ही रहो। अधिक लम्बा रहने का आयोजन मत बनाओ।"

....और छः महीने के बाद जमनादास बजाज इस संसार से ही चल दिये। किसको कब जाना है, कोई पता थोड़े ही है ! हाय रे हाय नश्वर शरीर ! तेरा कोई भरोसा नहीं।

हम श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं। जो श्वास छोड़ते हैं उसकी फुत्कार सामान्यतया बारह उंगल तक जाती है। योगाभ्यासी साधक प्राणायाम, ध्यान आदि करता है तो उसके प्राणों की गति बारह उंगल से कम हो जाती है। जब वह गति ग्यारह उंगल तक होती है तो सत्यसंकल्प का सामर्थ्य आता है। गति दस उंगल तक की हो जाती है तो बहुत आनन्द आता है और रचनात्मक कार्यों की सलाह देने का सामर्थ्य आता है। तीन उंगल की गति और कम हो जाती है तो जो होने वाला होता है वह अपने आप हृदय में स्फुरित हो जाता है।

ध्यान करने से, मन एकाग्र करने से प्राणों की गति नियंत्रित होती है और प्राणों का अनुसंधान करने से मन की एकाग्रता होती है। तब अपने आप प्रकृति की गतिविधियों का पता चलने लग जाता है। योगी को यह भी पता चलने लगता है कि कोई व्यक्ति कितना जीने वाला है।

यह सब खजाना अपने भीतर छुपा हुआ पड़ा है। कोई विरले होते हैं जो राग-द्वेष से रहित होकर योगाभ्यास करते हैं, ज्ञानाभ्यास करते हैं, ईश्वरीय जीवन बिताते हैं और महान् हो जाते हैं। बाकी के लोग संसार-भट्टी में अपनी इच्छा-वासनाओं की लकड़ियाँ एकत्रित करके, उसमें अन्तःकरण की मलिनता का केरोसीन डालकर, अहं की दीयासिलाई सुलगाकर आग जलाते हैं। फिर अन्दर कूदकर चिल्लाते हैं-

"हाय रे हाय....! मर गये.... मर गये... दुःखी हो गये...।"

वास्तव में उनके लिए आग जलाने वाला और कोई नहीं। स्वयं ही जिम्मेवार हैं। भगवान कहते हैं-

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।।

'सर्वव्यापी परमेश्वर भी न किसी के किसी के पापकर्म को और न किसी के शुभकर्म को ही ग्रहण करता है, किन्तु अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, उसी से सब अज्ञानी मनुष्य मोहित हो रहे हैं।'

(भगवद् गीताः 5.15)

को काहू को नहीं सुख दुःख करी दाता।
निज कृत करम भोगतहिं भ्राता।।

बाहर की आग जलाती है तो फायर ब्रिगेड का बम्बा आता है। अन्तःकरण में राग-द्वेष की आग जले तो सत्संगरूपी बम्बे का फव्वारा करो तो शांत होगी, अन्यथा नहीं होगी। आत्मज्ञान के सत्संग का शीतल जल डालोगे तभी संसार-भट्ठी की आग शांत होगी।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ब्रह्माकार वृत्ति बनाओः पार हो जाओ

ये हि वृत्तिं विजानन्ति ज्ञात्वापि वर्धयन्ति ये।
ते वै सत्पुरुषा धन्या वन्द्यास्ते भुवनत्रये।।

'जो इस ब्रह्माकार वृत्ति को जानते हैं और जानकर उसे बढ़ाते हैं वे सत्पुरुष धन्य हैं। वे ही तीनों लोकों में वन्दनीय हैं।"

(अपरोक्षानुभूतिः 131)

जो ब्रह्माकार वृत्ति को नहीं जानते वे घटाकार वृत्ति को पटाकार वृत्ति को, मठाकार वृत्ति को, दुःखाकार वृत्ति को, सुखाकार वृत्ति को चिपक-चिपक कर अपने को सताते रहते हैं। वृत्ति तो उत्पन्न होती है लेकिन घड़ा देखा तो घटाकार वृत्ति, मठ देखा तो मठाकार वृत्ति, मित्र देखा तो मित्राकार वृत्ति, पुस्तक देखा तो पुस्तकार वृत्ति....। ये वृत्तियाँ तो उठती हैं मगर जिन्होंने सत्संग सुनकर ब्रह्माकार वृत्ति को जान लिया वे पुरुष धन्य हैं।

सारे दुःखों का मूल कारण है जीव के उदगम-स्थान ब्रह्म-परमात्मा को नहीं जानना। उपनिषद कहती हैः **ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशेभ्यः।** उस देव को जानने से आदमी सारे बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

अपने में दोष निकालना अच्छा है। दोष निकालने के लिए गुण भरना ठीक है। वह भी एक प्रकार का गुण ही तो है। गुण प्रकृति में होते हैं। दोषी होने की अपेक्षा गुणवान होना ठीक है। सिर में केरोसीन लगाने की अपेक्षा सुगन्धित तेल लगाना ठीक है। लेकिन वह भी साबुन लगाकर उतारना पड़ता है नहीं तो वह मैल बना देता है। यज्ञ करते भी हाथ जलते हैं।

एक आदमी दुष्कृत्य करता है तो लोहे की जंजीरों से बंधता है, दूसरा आदमी सत्कृत्य करता है तो सोने की जंजीरों से बंधता है, बंधन तो दोनों को है।

ब्रह्माकार वृत्ति सुकृत-दुष्कृत दोनों को पार करके, कृत अकृत से पार अपने स्वरूप में जगा देती है।

सुकृत अच्छा है दुष्कृत की अपेक्षा। जीव को ढाँकने वाले सुकृत-दुष्कृत दोनों से परे अगर नहीं पहुँचा, सुकृत-दुष्कृत से जीव ढँकता रहा तो सुकृत पूर्ण नहीं हो सकता। पाप का फल दुःख मिल कर पाप खत्म हो जाता है। पुण्य का फल सुख मिल कर पुण्य खत्म हो जाता है।

पाप न करे, पुण्य करे पर पुण्य का कर्ता कौन है ? इस देश के मनीषी तत्त्ववेत्ताओं की यह प्रसिद्ध विलक्षणता है कि कोई भी विचार करेंगे तो उसके परिणाम पर नजर दौड़ायेंगे। आखिरी परिणाम क्या ? आप जो भी करते हैं उसका अंतिम ध्येय क्या ? जिनका आखिरी परिणाम मोक्ष नहीं है, जिनका आखिरी परिणाम जीवन्मुक्ति नहीं है, जिनका आखिरी परिणाम ब्रह्माकार वृत्ति नहीं है वे सारे के सारे कृत्य बालकों की चेष्टा है। सारे दर्शन शास्त्र, सारी उपासनाएँ, सारा योग, सारा ध्यान, ज्ञान, भक्ति, भजन-भाव का आखिरी लक्ष्य है जीव बंधन से मुक्त हो जाये। **यज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशेभ्यः।** जिसको जानने से सब पाशों से जीव मुक्त हो जाय उस देव को जानने का अगर हेतु है तुम्हारे क्रिया-कलापों का, तो ठीक है। उस देव को कब जाना जाता है ? जब ब्रह्माकार वृत्ति पैदा होती है तब।

घटाकार वृत्ति पैदा हो रही है, मठाकार वृत्ति पैदा हो रही है, सुखाकार वृत्ति पैदा हो रही है लेकिन सुखाकार वृत्ति जितनी देर टिकी उतनी देर सुख, फिर वृत्ति बदली तो सब बदल गया। दुःखाकार वृत्ति आयी तो दुःख। ब्रह्माकार वृत्ति एक बार उत्पन्न हो जाए तो आवरण भंग हो जाता है। फिर सुख-दुःख मे सत्यबुद्धि नहीं रहती, मान-अपमान में सत्यबुद्धि नहीं रहती, पुण्य पाप में सत्यबुद्धि नहीं रहती, विक्षेप और समाधि में सत्यबुद्धि नहीं रहती।

यह बहुत ऊँची बात है। यह ज्ञान पाने के लिए राजा-महाराजा लोग सिर में खाक डालकर हाथ में काँसा लेकर संतों के द्वार खटखटाते थे।

ब्रह्माकार वृत्ति को उत्पन्न करने की कला को जानें। ब्रह्माकार वृत्ति उत्पन्न हो जाय फिर उसको बढ़ावें।

अब ऐहिक विज्ञान ने भी प्राचीन ऋषियों के सत्य की ओर कुछ यात्रा की है। वे भी कहते हैं कि सबका पर्यवसान आखिर एक में ही आता है। घूमते-घामते जहाँ से शुरु हुआ था वहीं आदमी पहुँच जाता है। सब एक से जुड़े हैं। हर व्यक्ति, हर प्राणी, जीव मात्र एक से जुड़े हैं। तिनका हो या वटवृक्ष, पत्थर हो या पहाड़, सब पृथ्वी से जुड़े हैं और पृथ्वी जुड़ी हैं सूर्य से। इस प्रकार आप हम सब सूर्य से जुडे हैं। और सूर्य जिससे जुड़ा है उस परम तत्त्व से हम भी जुड़े हैं।

एक छोटी सी झोंपड़ी में बिजली का बल्ब जल रहा है। बल्ब वायर से जुड़ा है। वायर क्रमशः आगे बढ़ता हुआ आखिर में बिजली घर (Power House) से जुड़ा है। शहर भर के सारे बल्ब इस प्रकार पावर-हाउस से जुड़े हैं। पावर-हाउस का प्रकाश ही वायर के द्वारा सब बल्बों को मिलता है। ऐसे ही इस विश्व में जो कुछ है वह सब प्राणी-पदार्थ-जीव मात्र परब्रह्म परमात्मा से जुड़े हैं। परमात्मा की चेतना से ही उत्पन्न होते हैं, उसी में स्थित रहते हैं और पुनः उसी में विलीन हो जाते हैं।

बहती नदी में भँवर बनते हैं। भँवर बनने की जगह एक है। आगे से पानी बहता-बहता आता है। वहाँ पर आता है तो भँवर के रूप में घूमने लगता है। फिर आगे बढ़ जाता है। उसकी जगह दूसरा पानी भँवर के रूप में स्थान ले लेता है। लगता है कि भँवर वही का वही है। वास्तव में भँवर वही का वही नहीं रहता। सतत बदलता रहता है। पानी आगे बढ़ता रहता है। नया पानी सतत आता रहता है, भँवर बनता रहता है।

हमें भी लगता है कि यह शरीररूपी भँवर भी वही का वही है। वास्तव में पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पाँचभूत की सूक्ष्म सत्ता शरीर में सतत बदलती रहती है। हर श्वास में हम परिवर्तित होते रहते हैं। हाँ... हम नहीं, शरीर परिवर्तित होता रहता है।

हर श्वास में भौतिक शरीर को जिस चैतन्य सत्ता से बदलाहट मिलती है उस चैतन्य सत्ता को खोजकर उसके अनुरूप, ब्रह्म परमात्मा के चिन्तन अनुरूप वृत्ति बनाना ही ब्रह्माकार वृत्ति कहलाती है।

वृत्ति भगवदाकार बनती है, इष्टाकार बनती है, स्मरणाकार बनती है। जब स्मरण होता है तो लगता है कि हमारा स्मरण चालू है किन्तु 'स्मरण चालू नहीं था', 'स्मरण चालू है' और 'स्मरण छूट गया' इन तीनों अवस्थाओं को जो जानता है वह कौन है ?

खोजनहारनूँ खोज ले ढूँढनहारनूँ ढूँढ ले....

आहा ! बेड़ा पार हो जाय। वे लोग धन्य हैं जो ब्रह्माकार वृत्ति को जानते हैं और जानकर बढ़ाते रहते हैं।

मारवाड़ में कोई सज्जन थे। कमाने के लिए जब कलकत्ता जाने को निकले तब उनकी पत्नी गर्भवती थी। वे सज्जन पंद्रह-सत्रह साल कलकत्ते में रह गये। पुरानी बात है। उस समय तार-टपाल या गाड़ी इत्यादि का जमाना नहीं था। संदेश-व्यवहार या यातायात शीघ्रता से नहीं हो पाता था।

इधर पत्नी को बेटा हुआ और बड़ा होते-होते सत्रह साल का हो गया। बाप ने बेटे को नहीं देखा था, बेटे ने बाप को नहीं देखा था। माँ ने बेटे से कहाः

"बेटा ! तेरे पिता कई वर्ष पूर्व कलकत्ते गये हैं, कमाने के लिए। उनका क्या हुआ, कमाये कि नहीं कोई पता नहीं। इधर हम लोग कठिनाई में दिन गुजार रहे हैं। अब तू बड़ा हो गया है। कलकत्ता जाकर अपने पिता की तलाश कर।"

बेटा घर से रवाना हो गया। उधर बाप को भी विचार आयाः 'बहुत साल हो गये। अब मैं घर जाऊँ। कुटुम्ब परिवार से मिलूँ।" वह भी कलकत्ते से रवाना हो गया अपने वतन में आने के लिए।

बेटा तो गरीबी में दिन काट रहा था। खाने-पीने का कोई खास ठिकाना नहीं। कपड़े भी ऐसे वैसे चीथड़े जैसे। ओढ़ने-बिछाने की मैली चदरिया थी वह लेकर निकल पड़ा था। रास्ते में

कहीं धर्मशाला में ठहरा रात गुजारने के लिए। संयोगवश कलकत्ता से चला हुआ पिता भी उसी धर्मशाला में ठहरा था। उसका ठाठ देखकर अच्छा बढ़िया कमरा दिया गया। लड़के का दरिद्र दीदार देखकर उसे एक छोटी सी खोली दी गई। रात्रि को ठण्ड के मारे ठिठुर रहा था, खाँसी जुकाम से खों-खों कर रहा था। उसकी आवाज से तंग आकर सेठ ने व्यवस्थापक को बुलायाः

"ऐसी सुन्दर धर्मशाला है ! इसमें ऐसे रोगियों को ठहरने देते हो ? नींद खराब हो रही है। हटाओ इसको। चाहिए तो हमसे चाहे अधिक ले लो पर हमारी नींद खराब मत करो। कभी से यह खों-खों की आवाज आ रही है।"

लड़के को धर्मशाला से बाहर निकाल दिया गया। गली में सारी रात मारे ठण्ड के ठिठुरता रहा, खाँसता रहा, परेशान होता रहा। सेठ ने आराम की नींद ली।

सुबह में सेठ बाहर निकले। लड़के पर दृष्टि पड़ी। वे बड़बड़ाने लगेः

"ऐसे बदतमीज लोग धर्मशाला में रहने को आ जाते हैं ! कहाँ से आया रे ?"

"सेठजी ! राजस्थान के फलाने गाँव से।"

सेठ ने सोचाः अरे यह तो मेरा ही गाँव है ! उनका कौतूहल बढ़ा।

"कौन सी जात का है ?"

"मारवाड़ी।"

"मारवाड़ी ? कुल कौन-सा ?"

"फलाना।"

"अच्छा तेरे बाप का नाम क्या है ?"

लड़के की आँख से आँसू बहने लगे। अपने पिता का नाम बताते हुए अपनी परिस्थिति का बयान किया तो सेठ जी एकदम से आगे बढ़ गये। 'बेटा....! कहकर उसे गले लगा लिया। पिता-पुत्र का प्रथम मिलन...।

अब लड़के की खाँसी कहाँ भाग गई.... उसकी दरिद्रता कहाँ पलायन हो गई... सेठ को पता ही नहीं चला। मैला-कुचैला बेटा अब मधुर हो गया। उसमें मेरा आ गया न, तो सारे दोष गायब हो गये। लड़का भी दिल में सेठ के प्रति शिकायत नहीं करता, बददुआ नहीं देता कि सेठ का सत्यानाश हो.... मेरी रात खराब कर दी... कातिल ठण्डी में रात्रि को बाहर निकलवा दिया....। अब ऐसी भावना दिल में नहीं टिकेगी क्योंकि वह त्राहित व्यक्ति अब 'मेरे पिता' हो गये न !

दोनों अनजान थे तब परस्पर दुत्कार रहे थे। बाप वाणी से प्रत्यक्ष में दुत्कारता था और असहाय होकर मन ही मन कुढ़ रहा था। जब दोनों ने जान लिया कि हम दोनों का रक्त एक ही है, हम पिता-पुत्र हैं तब दोनों की भावना में मधुरता आ गई।

क्रोध कब होता है ? जब दूसरा होता है तब। चिन्ता, भय, तिरस्कार कब होता है ? जब दूसरा होता है तब।

जिससे भय होता है उसमें अपने चैतन्य को देख लो तो भय प्रेम में बदल सकता है, घृणा स्नेह में परिवर्तित हो सकती है। बाहर से आप व्यवहार के अनुरूप लेना देना, आना-जाना, हँसना-रोना सब करेंगे यथोचित, और भीतर से आपको लगेगा कि एक ही का यह सब पसारा है और वह एक मैं ही हूँ। जैसे, आपकी पाँच उँगलियाँ भिन्न-भिन्न हैं, छोटी-बड़ी हैं, पैरों की उँगलियाँ अलग ढंग से हैं फिर भी हैं तो सब आपकी ही। हाथ, पैर, सिर, छाती, पेट, पीठ, बाल आदि सब अलग-अलग होते हुए भी कुल मिलाकर तो आप ही हैं न ?

जैसे इस देह में अंग भिन्न-भिन्न होते हुए भी सब मिलाकर एक अभिन्न सत्ता से संचालित है और एक अभिन्न सत्ता के लिए ही सब काम कर रहे हैं। ऐसे ही पूरे ब्रह्माण्ड में जो भिन्न-भिन्न क्रिया-कलाप है वह अभिन्न चैतन्य से संचालित है और उसी को मिलने के लिए ही सब जाने या अनजाने में यात्रा कर रहे हैं। देर-सवेर सब वही जाएँगे। चाहे कैसा भी पापी हो, हजारों-लाखों जन्म के बाद भी वह वहीं जाएगा। देर-सवेर वहीं पहुँचना पड़ेगा। तो शीघ्रता से अभी यात्रा क्यों न कर लें ?

इस जीव को झख मारकर देर-सवेर ब्रह्माकार वृत्ति में पहुँचना ही पड़ेगा। अमरिका जाने के लिए बैलगाड़ी में बैठकर यात्रा करो तो कैसा रहे ? बैल बदलते-बदलते, रात दिन चलते-चलते, वर्षों के बाद पता चले कि हवाई जहाज में ही अब बैठना पड़ेगा अमेरिका पहुँचने के लिए। वर्षों के बाद हवाई जहाज में बैठो अथवा अभी से समझ लो कि बैलगाड़ी में अमेरिका नहीं जा सकते और हवाई जहाज में बैठ जाओ, मर्जी तुम्हारी।

ऐसे ही जगताकार वृत्ति से तुम जगदीश्वर के पास नहीं जा सकते हो। ब्रह्माकार वृत्तिरूपी हवाई जहाज के पास नहीं जा सकते हो। ब्रह्माकार वृत्तिरूपी हवाई जहाज में बैठो तो तुम अभी जगदीश्वर से भिन्न नहीं हो।

वृत्तियाँ तो तुम बनाते ही रहते हो सतत। मुंबई-आकार वृत्ति बनाई तो मुंबई दिखा, मद्रास-आकार वृत्ति बनाई तो मद्रास दिखा। इन वृत्तियों के बिना मुंबई और मद्रास नहीं दिखेंगे। इस प्रकार की वृत्तियाँ आप दिनभर में हजारों की संख्या में बनाते हो। ये सब वृत्तियाँ बैलगाड़ी के चाक घुमाने जैसी हैं। बैलगाड़ी के चाक धरती को छोड़कर नहीं जा सकते इसी प्रकार ये सब वृत्तियाँ देह में, ब्रह्मरूप में नहीं पहुँचती। एक ब्रह्माकार वृत्ति ही अपना देहाध्यास छुड़ाकर ब्रह्म में प्रतिष्ठित कर देती है।

एक कहानी हैः

सेठ टोपणदास तीस-चालीस साल से हर रोज प्रातःकाल चार बजे से दस बजे तक छः घण्टे पूजा-पाठ करने बैठते थे। यह उनका दैनिक नियम था। ठाकुरजी आगे घंटी बजाते, फूल-माला चढ़ाते, आरती पूजा करते, भोग लगाते। पूजा के समय उनकी वृत्ति फूल-आकार हो जाती चन्दन अगरबत्ती आकार हो जाती। फिर ठाकुरजी आकार हो जाती, हनुमानजी आकार हो जाती। इसके साथ दूसरी वृत्तियाँ भी चालू रहती।

टोपणदास के सबसे छोटे बेटे की अठारह वर्षीया पत्नी जब घर में आयी तो टोपणदास की पूजा-सामग्री में सहयोग देने का कार्य उसे सौंपा गया।

एक दिन सुबह में कोई आदमी सेठ से मिलने आया।

"सेठ टोपणदास हैं ?"

"नहीं... । वे पीढ़ी पर गये हैं।" बहू ने कह दिया।

पूजा के खण्ड में बैठे सेठ सुनकर ऊपर-नीचे होने लगे। सोचने लगेः 'बहू अभी-अभी मुझे फूल देकर गई है, उसे पता है फिर भी बोल रही है पीढ़ी पर गये हैं ?' मन ही मन बहू को डाँटने लगे।

कुछ ही देर में दूसरा आदमी आया और बोलाः

"सेठ टोपणदास हैं ?"

"हैं तो सही लेकिन अभी फुर्सत नहीं है। अपनी बहू को डाँट रहे हैं, सलाह-सूचन दे रहे हैं।"

सेठ को आश्चर्य हुआ कि कल की छोटी लड़की मेरे मन की बात कैसे जान गई !

सेठ पूजा भी किये जा रहे हैं, धूप-दीप-अगरबत्ती भी किये जा रहे हैं, मंत्र भी गुनगुनाये जा रहे हैं और दूसरे भी कई विचार उनके मन में उठे जा रहे हैं। सेठ सोच रहे हैं कि, 'कल मोची ने रूपया तो ले लिया लेकिन जूता ठीक से सीकर नहीं दिया। आज उसकी खबर लूँगा और चप्पल मुफ्त में सिलवा लूँगा।' सेठ पूजा कर रहे हैं और जूताकार वृत्ति बनाये जा रहे हैं। इतने में ही तीसरा आदमी आयाः

"सेठ टोपणदास हैं ?"

"अभी वे मोची के पास गये हैं, मोची को डाँट रहे हैं, मुफ्त में चप्पल सिलवाने का आयोजन कर रहे हैं। अभी उन्हें फुर्सत नहीं है।" बहू ने बाहर से ही जवाब दे दिया।

सेठ भीतर पूजा-खण्ड में बैठे-बैठे लाल-पीले हो रहे हैं। बहू इतना हलाहल झूठ बोल रही है, बदतमीज ! बैठा हूँ पूजा में और बोल रही है मोची के पास गये हैं ! कब दस बजें, मैं बाहर निकलूँ और बहू की खबर लूँ ? यह घड़ी भी कमबख्त आज धीरे चल रही है।'

चित्त में जब एक साथ अनेक वृत्तियाँ उभरने लगती हैं तो चित्त अशांत हो जाता है, समय जल्दी पसार नहीं होता। वृत्ति जब एकाकार होती है तो सुख मिलता है, समय कैसे चला जाता है कुछ पता ही नहीं चलता। जब एक साथ कई फालतू वृत्तियाँ उठती हैं तब सुख का एहसास नहीं होता। आप मानते हैं कि आपका समय नहीं जाता।

कैसे भी करके दस बजे। सेठ जी अपना पूजा का नियम पूरा करके बाहर आये। छोटी बहू को डाँटने का सोचा है। वृत्ति में क्रोध उबल रहा है।

वृत्ति अगर ब्रह्माकार नहीं है तो अन्य कई प्रकार की झंझटें बना लेती है। सत्त्वगुण से दयालु वृत्ति बनती है, रजोगुण से क्रोध, अहंकार, दर्प आदि की वृत्ति बनती है, तमोगुण से प्रमाद, आलस्य आता है।

वृत्ति में जब प्रेम, क्षमा, शांति, आनन्द आये तो समझो सत्त्वगुण का प्रभाव है। सत्त्वगुण की वृत्ति भी टिकती नहीं , रजोगुण की वृत्ति भी टिकती नहीं और तमोगुण की वृत्ति भी टिकती नहीं। वृत्तियाँ सदा बदलती रहती हैं।

ब्रह्माकार वृत्ति ऐसी है कि बदलने वाले को बदलने वाला समझकर अबदल तत्त्व का साक्षात्कार कर ले।

न चलति भगवतपदाविन्दात् लवनिमिषार्धमपि।

जिसकी वृत्ति ब्रह्माकार बनी है वह एक क्षण के लिए भी भगवच्चरणों के विचलित नहीं होगा। वह चाहे सत्त्व-रज-तमोगुण की वृत्तियों से काम लेता है, फिर भी अपने ऊँचे अनुभव में ही विचरता है। सनकादिक ऋषि, पाँच-पाँच वर्ष के बालक, क्रीड़ा करते हैं, यात्रा करते हैं फिर भी एक क्षण मात्र ब्रह्माकार वृत्ति से, भगवद् अनुभव से नीचे नहीं आते। वशिष्ठजी महाराज उपदेश देते हैं, आश्रम चलाते हैं फिर भी क्षणभर भी ब्रह्माकार वृत्ति से नीचे नहीं आते। वामदेव जी महाराज या शुकदेव जी महाराज आदि महापुरुष अपनी कंदरा छोड़कर, गुफा छोड़कर, झोपड़ी छोड़कर, जंगल छोड़कर नगर के रास्ते से गुजरते हैं, लोग उन्हें कंकड़-पत्थर मारकर अपमान करते हैं फिर भी उनकी ब्रह्माकार वृत्ति टूटती नहीं। उनकी दृष्टि में सब ब्रह्म है। उन्हें किसी भी विषम परिस्थिति में क्षोभ नहीं होता। शुकदेव जी महाराज राजा परीक्षित के वहाँ सोने के सिंहासन पर बैठते हैं फिर भी कोई हर्ष नहीं होता। उनके लिए सुखाकार-दुःखाकार, हर्षाकार-द्वेषाकार-शोकाकार वृत्ति का कोई महत्त्व नहीं है। उनकी सारी वृत्तियाँ बाधित हो जाती हैं।

ऐसा नहीं कि ज्ञानी को ठंड नहीं लगती। ऐसा नहीं कि ज्ञानी को सज्जन सज्जन और दुर्जन नहीं दिखेगा। दिखेगा तो सही पर उसकी सत्यता नहीं भासेगी। सत्यता तो सार तत्त्व सर्वेश्वर की दिखेगी।

आपने अन्धेरे में रस्सी को साँप मान लिया। बेटरी जलाकर ठीक से जान लिया कि यह साँप नहीं, रस्सी ही है। फिर दूर जाकर देखोगे तो दूसरों की तरह आपको भी दिखेगा कि साँप है लेकिन भीतर से समझोगे कि रस्सी ही है। रस्सी ही साँप जैसी होकर दिख रही है। साँप वास्तव में है नहीं। साँप की सत्यता आपकी दृष्टि में गायब हो जायेगी। रस्सी में दिखता हुआ साँप आपको भयभीत नहीं कर सकेगा।

ऐसे ही ब्रह्माकार वृत्ति में सदैव प्रतिष्ठित ऐसे ज्ञानी पुरुषों की दृष्टि में संसार की सत्यता उतनी ही है। जितनी रस्सी में दिखते हुए साँप में सत्यता है। अन्य लोग संसार को सत्य

मानकर सुख के लिए चेष्टाएँ करते हैं जबकि ज्ञानी संसार की पोल जान लेते हैं। उनको संसार का कोई आकर्षण नहीं रहता।

संसार की नज़रों में चाहे कोई करोड़पति बन जाय फिर भी सत्य की दुनियाँ में उसने कौड़ी भी नहीं कमाई। वह समझेगा कि मैंने बड़ा काम कर लिया, करोड़पति बन गया। ब्रह्मवेत्ता की दृष्टि में उसने केवल समय बरबाद किया, और कुछ नहीं। अपने आपको जाना नहीं और जिसके लिए करोड़ रूपये कमाये उस शरीर को जला देना श्मशान में।

मत कर रे गरव गुमान गुलाबी रंग उड़ी जावेलो...।

इसका मतलब यह नहीं कि तुम धन्धा न करो, मकान न बनवाओ। इसका मतलब है कि उसमें अपनी वृत्ति को ज्यादा सत्यबुद्धि से स्थापित मत करो। जो काम करते हो, उत्साहपूर्वक करो, कुशलता से करो लेकिन ऐसा न करो कि उसमें एकदम उलझ जाओ, फँस मरो उसको सत्य मानकर। जो अपने लिए वास्तव में करना है, जिस कार्य के लिए मनुष्य जन्म मिला है वह कार्य अछूता ही रह जाए ऐसे धोखे में नहीं रह जाना।

दस बजे सेठ टोपणदास पूजा खण्ड से बाहर आये। उनकी वृत्ति क्रोधाकार बनी हुई है। छोटी बहू को बुलाया और झुँझलाकर कहाः

"अरे बहू ! तू मेरे पास फूल रखकर गई, चंदन रखकर गई। मैं पूजा में ही अब तक बैठा था, तुझे पता नहीं था ? सबको बोल रही थी कि सेठ पीढ़ी पर गये हैं, बाजार में गये हैं, यहाँ गये हैं, वहाँ गये हैं....। क्यों ऐसा झूठ बोल रही थी।"

बहू विनम्रता से मौन खड़ी रही।

सेठ आगे बढ़ेः "मैं चालीस-चालीस साल से पूजा कर रहा हूँ। इतनी तो तेरी उम्र भी नहीं होगी। कितनी है तेरी उम्र ?"

"ससराजी !" अब बहू ने विनीत भाव से जवाब देना प्रारंभ किया। "मेरी उम्र का तो कोई पता नहीं, कोई पार नहीं, हाँ.... शरीर की उम्र 18 साल 8 महीना है !"

"क्या बोलती है ? तेरी उम्र का कोई पार नहीं ?"

"हाँ....। सृष्टि की उत्पत्ति से भी पहले मैं थी। प्रलय के बाद भी रहूँगी। जिसका कोई आदि अंत नहीं है ऐसा जो आत्मा है वह मैं हूँ।"

बहू के पिता जी सत्संगी थे, पूरा परिवार सत्संगी था। ब्रह्मवेत्ता गुरुदेव के पास वह भी जाती थी, सत्संग सुनती थी, ध्यान करती थी और वेदान्त-विचार भी किया करती थी। उसको सत्संग का स्वाद आ चुका था। कुछ-कुछ भीतर की यात्रा हो गयी थी।

सेठ जी ने पूछाः "अच्छा, शादी किये कितने दिन हुए ?"

"मेरी कभी शादी हुई ही नहीं। शादी शरीर की हुई है।"

"छोड़ो ये सब बातें। मैं भीतर ही था फिर भी तू झूठ क्यों बोली ?" टोपणदास डाँटने लगे।

"ससराजी ! आपका शरीर पूज़ा-घर में था पर आपका मन पीढ़ी पर था इसलिए पहले आदमी को मैंने कह दिया कि आप पीढ़ी पर गये हैं।"

अब सेठजी की आवाज में नम्रता आयी। बहू की बात सही थी।

"अच्छा.... तो दूसरी बार मैं तुझसे कुछ बोला भी नहीं था फिर भी ऐसा क्यों कह दिया कि सेठजी बहू को डाँट रहे हैं ?"

"ससराजी ! बाहर से तो आप पूजा कर रहे थे लेकिन मन ही मन कह रहे थे कि यह आज कल की छोरी आई है, झूठ बोल रही है, ऐसी है.... वैसी है... मैं पूजा से उठकर खबर लूँगा। यब सब उस समय आपके मन में चल रहा था।"

टोपणदास ने भीतर ही भीतर कबूल किया कि बात बिल्कुल सही है। बहू के लिए, बहू की प्रज्ञा के लिए उनका मान एकदम बढ़ गया। स्नेह से आगे पूछने लगेः

"अच्छा बेटा ! वह मोची और जूते वाली बात....?"

"पिताजी ! आप शरीर से तो यहीं थे पर मन से मोची के पास गये थे।"

आप जिस समय जैसी वृत्ति करते हैं वैसे ही बन जाते हैं। दुकान की वृत्ति करते हैं तो आप दुकान पर हैं, घर की वृत्ति करते हैं तो आप घर पर हैं। आप देहाकार वृत्ति करते हैं तो आप देह है। आप ईश्वराकार वृत्ति करते हैं तो आप इष्ट में आ जाते हैं। ऐसे ही आप ब्रह्माकार वृत्ति करोगे तो आप ब्रह्म स्वरूप में आ जाओगे। तब बेड़ा पार हो जाएगा।

वृत्तियाँ तो आप बनाते ही हो। अब ब्रह्माकार वृत्ति बनाकर तमाम-तमाम बन्धनों से, तमाम-तमाम दुःखों से, तमाम-तमाम परेशानियों से अपना पिण्ड छुड़ा लो और आनन्द-स्वरूप हो जाओ, मुक्त हो जाओ।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

कुदरत जिसकी सत्ता से चलती है उस सत्य में वे टिके हैं इसलिए वे सत्पुरुष हैं। हम लोग साधारण परिवर्तनशील चीजों में टिके हैं इसलिए हम साधारण हैं। हम प्रकृति में टिके हैं इसलिए प्रकृतिजन रह जाते हैं। और वे सत्यस्वरूप में टिके हैं इसलिए संस्कृतजन हैं।

वास्तव में सुख बाहर नहीं है। आपकी मान्यता है कि सुख बाहर है, सुख चीजों में है, सुख पदार्थों में है, सुख व्यक्तियों में है, सुख सुविधाओं में हैं। इस मान्यता के कारण आपको सुखाभाव होता है। अगर सोफा में सुख होता, सोफा में बैठने से मजा आता तो वैशाखनन्दन (गधे) को सोफा में बैठा दो। वह परेशान हो जाएगा।

जिसको सोफा में सुख की वृत्ति है उसको वहाँ मजा आता है। वह मजा सदा नहीं टिकता। कुछ देर बाद वृत्ति बदल जायेगी और कहीं सुख दिखाएगी और वहाँ जाने के लिए बाध्य करेगी, और कुछ पाने का परिश्रम करवायेगी। सुख की खोज पूरी नहीं होगी, चित्त सदा भटकता रहेगा, जीव को भटकाता रहेगा, आत्म-शांति से विमुख करता रहेगा। वृत्तियों की भागदौड़ में युग बीत जाएंगे, विश्राम-स्थान नहीं पायेंगे।

वृत्ति जहाँ से उठती है उस मूल तत्त्व में वृत्ति लगाने से वृत्ति विश्रांत को पाती है। जहाँ से वृत्तियाँ उठ-उठकर लीन हो जाती हैं वह तत्त्व क्या है ? उठती हुई वृत्ति को और लीन होती हुई वृत्ति को देखने वाला कौन है ? यह खोजो। वह तत्त्व मिल जायेगा तो मन उसमें शांत होता जाएगा। यही तत्त्व है परब्रह्म परमात्मा। वास्तव में हम सबका, जीव मात्र का अपना आपा। उसमें जो सत्पुरुष टिके हैं वे नित्य, मुक्त, आनन्द-स्वरूप, चैतन्य-स्वरूप हो जाते हैं।

एक बार ब्रह्माकार वृत्ति बन गई तो वह पुरुष चित्त से निर्लेप हो जाता है। उसके चित्त में वृत्तियाँ सब आएँगी पर उसका चित्त से तादात्म्य नहीं होगा। इनसे वह देह रहते हुए मुक्ति का अनुभव करेगा। सब कुछ करते हुए निर्लेप नारायण।

कर्म कोई भी करो, अगर कर्त्तापन मौजूद है तो चित्त का चढ़ाव-उतार भी मौजूद रहेगा ही। सुख-दुःख का प्रभाव होगा ही। चित्त में समता नहीं टिकगी। जैसे यज्ञ करते-करते कभी हाथ जल जाता है ऐसे सत्कर्म करते करते कभी अहं आ जाता है।

यह सारा पंचभौतिक विस्तार है। सूक्ष्म से स्थूल हो गया है। गुलाब का पौधा सूरज के सूक्ष्म किरण पीता है, पृथ्वी के सूक्ष्म कण खाता है। सूक्ष्म से स्थूल बन जाता है।

जीव भी अन्न-जल खाते पीते हैं। उसी से ठोस हड्डियाँ बन जाती हैं।

पानी का मूल स्वभाव है शांत तरल अवस्था। उसे फ्रीज में रख दो ठोस बर्फ बन जाएगा। पानी को उबालो तो सूक्ष्म वाष्प बन जाएगा। ऐसे ही पड़ा रहने दो तो वह गर्मी भी छोड़ देगा।

ऐसे ही तुम्हारा मूल स्वभाव शांत है। अनुकूलता मिली तो तुम्हारी वृत्ति स्थूल हो जाएगी, प्रतिकूलता मिली तो वृत्ति कुछ और बन जायेगी, सेवा-पूजा की, कुछ ध्यान भजन किया तो वृत्ति थोड़ी सूक्ष्म हो जाएगी। जब अपने को ब्रह्मस्वरूप में जानोगे तब सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व में प्रतिष्ठित हो जाओगे। सब कुछ आप ही बन बैठे हो... यह पूरा विश्व, अनंत-अनंत ब्रह्मांड आप ही का पसारा है यह आपको पता चलेगा। ऐसे अपने विराट स्वरूप में जग जाओगे।

मूल पर दृष्टि रहेगी तो ब्रह्माकार वृत्ति खोलने में देर नहीं लगेगी। जैसे, घर अपना नहीं है। घर बना है ईंट-चूने-लोहे-लक्कड़ से। ये सब चीजें हैं प्रकृति की। प्रकृति है परमात्मा की तो घर परमात्मा का हुआ। अन्न भी परमात्मा का खाया। अन्न खाकर वीर्य बना. वीर्य से बच्चे पैदा हुए तो बच्चे भी परमात्मा के। गलती से बच्चों में मेरा.... मेरा.... करके ममता हो गई। बच्चों को परमात्मा के समझकर व्यवहार करो तो वृत्ति जल्दी व्यापक बन जाएगी।

जो पराया है उसे अपना मानकर स्नेह करो, उसकी सेवा करो। जो अपना है उसे परमात्मा का जानकर ममता छोड़ो। साधक को ऐसा रहना चाहिए कि संसार में रहते हुए, संसार की सेवा करते हुए, परिवार का कर्त्तव्य-कर्म बजाते हुए ममता छूट जाय।

कभी-कभी समय निकालकर एकान्त अज्ञातवास में, त्रिबन्ध प्राणायाम की विधि जानकर थोड़ा-ध्यान-मग्न हुआ करें। इससे दिव्य प्रकाश मिलता है, कार्यक्षमता, विचार शक्ति आदि का

विकास होता है। लौकिक कार्य सुचारू रूप से हों और अनासक्ति की अमृतधारा चित्त में बहती रहे। मरने के बाद का वायदा नहीं, यही आत्म-परमात्म मस्ती और शांति की अनुभूति होगी। अनुष्ठान करने की विधि और आत्म-शक्ति जगाने की तत्परता हो तो यह काम आसान हो जाता है।

जीवन का सर्वांगी विकास करते हुए जीवनदाता की मुलाकात करने वाला तो धन्य हो ही जाता है, उसके माता-पिता, कुल-परिवार भी धन्य हो जाते हैं।

ॐ.....ॐ.....ॐ.....

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

महर्षि ऋभु और निदाघ

ब्रह्माजी के मानस पुत्र महर्षि ऋभु जन्मजात ज्ञातज्ञेय थे। अपने ब्रह्म-स्वभाव को, सुख-स्वभाव को जाननेवाले थे। फिर भी वैदिक मर्यादा का पालन करने के लिए उन्होंने अपने बड़े भाई सनत्सुजात की शरण ली थी। ऋभु मुनि ऐसे विलक्षण परमहंस कोटि के साधु हुए कि शरीर पर कौपीन मात्र था। उनका देह ही उनका आश्रम था, और कोई आश्रम उन्होंने नहीं बनाया था, इतने विरक्त महात्मा थे। वे सदा अपने स्वरूप में मग्न रहते थे।

जो लोग भोजन करके जिह्वा का रस लेना चाहते हैं वे लोग पेट के साथ अन्याय करते हैं, स्पर्श करके सुख लेना चाहतेहैं वे अपने आयुष्य के साथ अन्याय करते हैं। ऋभु मुनि इस प्रकार का अन्याय नहीं करते थे, क्योंकि ज्ञातज्ञेय थे। जानने योग्य पद को जान चुके थे, आत्म-विश्रान्ति पा चुके थे।

जैसे, पीपल का सूखा पत्ता.... हवा का झोंका आया, चल दिया, वैसे ही ऋभु मुनि.... जिधर शरीर का प्रारब्ध-वेग आया, अपनी मौज से चल दिये। इसी प्रकार से दसों दिशाओं में अपने सहज भाव से विचरण करते थे। वे हेयोपादेय बुद्धि से ऊपर उठे हुए थे। हेय माना त्याज्य। उपादेय माना ग्राह्य। दुःख को छोड़ो, सुख को पकड़ो। प्रतिकूलता को छोड़ो, अनुकूलता को पकड़ो। यह सामान्य जीव की बुद्धि होती है। ऋभु ऋषि इस हेयापादेय बुद्धि से मुक्त थे।

परात्पर ब्रह्म का और उनका स्वभाव एक था। वे अपने स्वभाव से च्युत नहीं हुए थे। इतर प्राणी, प्राकृतिक जीव अपने स्वभाव से गिरे हैं इसलिए दुःख पाते हैं। अपना आनन्द-स्वरूप आत्मस्वभाव भूले हैं इसलिए परिश्रम करके सुखी बनने के चक्कर में पड़े हैं। सुख कहीं दूर रह जाता है।

वास्तव में अपने आत्म-स्वभाव में आये बिना जीव के सब दुःख मिट नहीं सकते। पूरा सुख उसे मिल नहीं सकता। पूरा सुख तो अपने स्वभाव में है। हम गलती यह करते हैं कि मन

के स्वभाव को अपना स्वभाव मानते हैं। माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी, परिवार और जाति के संस्कारों से सीचें गये इस तन के स्वभाव को अपना स्वभाव मानते हैं। पारमार्थिक दृष्टि से जो परात्पर ब्रह्म, शुद्ध, बुद्ध, निष्कलंक नारायण है वह अपना वास्तविक स्वभाव है।

वह आत्म-स्वरूप आनन्द-स्वरूप है। उसको कुछ भोगकर, कुछ पाकर सुखी नहीं होना है। वह स्वयं सुख-स्वरूप है। जैसे शक्कर किसी मिठाई से सुख लेने जाय यह हास्यास्पद है, क्योंकि वह मिठाई शक्कर के कारण ही मीठी है। सुख-स्वरूप आत्मा जीव बनकर ऐसे ही नादानी कर रहा है। जीव संसार से सुख माँगने भाग रहा है। सूर्य पच्चीस वॉट के बिजली के गोले से प्रकाश लेने जा रहा है।

मन में जो हर्ष आता है वह मन की तरंग मात्र है। चुपचाप बैठे शांति मिलती है वह एक अवस्था मात्र है। इससे भी ऊँचा अपना आत्म-स्वरूप है, जिसको बोधवान पुरुष ज्ञानवान पुरुष जानते हैं। प्रारंभ में जब ज्ञान होता है तो मस्ती ऐसी उछलती है कि अहाहा......! फिर धीरे-धीरे वह अनुभव पच जाता है।

ऋभु मुनि ऐसे ही परिपक्व आत्मवेत्ता थे। किसी भी वस्तु, व्यक्ति, भोग, संयोग, वियोग में एकरस जो आनन्द-स्वरूप अपना स्वभाव है उस स्वभाव में वे जगे हुए थे।

आपका भी वही मूल स्वभाव है, पर आपको अपने स्वभाव का पता नहीं इसलिए पर स्वभाव से जुड़कर सुखी होने की मेहनत करते हैं। सब मेहनत कर-करके निष्फल हुए, पूरे सुखी नहीं हुए।

अगर कोई आत्मज्ञान के बिना अपने को सुखी मानता है तो वह या तो हकीकत से अनजान है अथवा धोखेबाज है। वह मूर्ख है। सुख की व्याख्या ही नहीं समझता है।

"क्यों भाई ! कैसे हो ?"

"अरे बड़ा मजा है। सुन्दर घर है, मधुरभाषिणी पत्नी है, आज्ञाकारी पुत्र है, घर की गाड़ी है, अभी-अभी प्रमोशन भी हुआ है। I am very happy."

जरा सा पेट दर्द होगा तो happiness गायब। नौकरी में बदली हो गई, बुढ़ापा आ जाएगा, पत्नी चल बसेगी तो happiness गायब। पत्नी की ओर से अनुकूलता पाकर जो अपने को सुखी मानता है उसका सुख खतरे में है। जो परिवार जनों के सहयोग और सुविधाएँ पाकर अपने को सुखी मानता है उसका सुख खतरे में रहता है।

सच्चे सुख में कोई खतरा नहीं रहता। उसे मौत भी कभी छीन नहीं सकती। उसके आगे सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय की भी कोई गणना नहीं। उस सच्चे आत्म-सुख के आगे ब्रह्माजी के ब्रह्मलोक का वैभव, विष्णुजी के विष्णुलोक का वैभव, शिवलोक का सामर्थ्य भी नन्हा सा हो जाता है। उसी आत्म-सुख में ऋभु मुनि जगे थे।

एक बार वे विचरण करते- करते पुलस्त्य मुनि के आश्रम में पहुँचे। पुलस्त्य- पुत्र निदाघ वेदाध्ययन कर रहा था। वेदाध्यायी उस ब्राह्मण-कुमार की बुद्धि कुछ गुणग्राही थी। उसने देखा कि

कोई परमहंस संत पधारे हैं। उठकर अभिवादन किया। प्र णाम किये। ऋभु मुनि ने उन पिता- पुत्र का आतिथ्य स्वीकार किया।

वेदाध्ययनरत निदाघ को देखकर महर्षि ऋभु को बड़ी दया आयी। उन्होंने कहाः "इस जीवन का वास्तविक लाभ आत्मज्ञान प्राप्त करना है। यदि वेदों को सम्पूर्णतः रट जाएँ और वस्तुत्त्व का ज्ञान न हो तो यह किस काम का है ? निदाघ ! तुम आत्मज्ञान का सम्पादन करो।"

महर्षि ऋभु की बात सुनकर निदाघ की जिज्ञासा जग गयी। उसने इन्हीं की शरण ली। अपने पिता की अनुमति से आश्रम छोड़कर महर्षि के साथ भ्रमण करने लगा। उसकी सेवा में तत्परता और त्याग देखकर महर्षि ने उसे तत्त्वज्ञान का उपदेश किया। ब्रह्मविद्या के संस्कार डाले। वेदान्त के सिद्धान्त समझाये, अभ्यास करवाया।

कुछ समय के पश्चात् महर्षि ऋभु को पता चला होगा कि अभी आम कच्चा है। निदाघ के भीतर कुछ वासना है। वेदाध्ययन और साधना तो करता है पर अभी संसार के सुख भोगने की लालसा मिटी नहीं। भगवान ऋभु ने आज्ञा दीः

"बेटा ! अब गृहस्थ धर्म का पालन करो और गृहस्थी में रहते-रहते मेरे दिये हुए ज्ञान का खूब मनन और निदिध्यासन करके मूल स्वभाव में जग जाओ।"

निदाघ गुरुआज्ञा शिरोधार्य करके अपने पिता के पास आया। पिता ने उसका विवाह कर दिया। इसके पश्चात् देविका नदी के तट पर वीरनगर के पास अपना आश्रम बनाया। वर्ष पर वर्ष बीतने लगे।

ब्रह्मवेत्ता महापुरुष हाथ पकड़ते हैं वह अगर श्रद्धा रखता है तो वे कृपालु महापुरुष उसकी निगरानी रखते हैं कि साधक कहीं भटक न जाये, कैसे भी करके संसार से पार हो जाए।

बहुत दिनों के बाद ऋभु मुनि को निदाघ की याद आयी। अपने अंगीकृत जन का कल्याण करने के लिए वे वहाँ पहुँचे गये।

निदाघ गृहस्थ धर्म का तो पालन करता था पर आध्यात्मिक जिज्ञासा की कमी होने के कारण तत्त्वज्ञान का मनन-निदिध्यासन नहीं करता था। सब ज्ञान प्रायः बिसार दिया था। ऋभु मुनि वहाँ पहुँचे तो उनको अतिथि संत-साधु मानकर उनका सत्कार किया, हाथ-पैर धुलाये, भोजन कराया। फिर विश्राम कराने लगा। ऋषि जी लेटे और निदाघ पास में बैठकर पंखा झलने लगा। फिर पूछाः

"महात्मा जी ! भोजन तो बराबर था न ? आप तृप्त तो हुए न ? अब आपकी थकान मिट रही है न स्वामी जी ?"

भगवान ऋभु समझ गये कि शिष्य ने मुझे पहचाना नहीं है। जो अपने आपको भी नहीं पहचानता वह गुरु को कब तक पहचानता रहेगा। गुरु को पहचानेगा भी तो बाहर के रूप आकार

को पहचानेगा। बाहर के रंग, रूप, वेश बदल गये तो पहचान भी बदल जाएगी। जितने अंश में आदमी अपने को जानता है उतने ही अंश में ब्रह्मवेत्ता गुरुओं की महानता का एहसास करता है।

जिनकी बुद्धि सदा ब्रह्म में रमण करती थी ऐसे कृपालु भगवान ऋभु ने निदाघ का कल्याण करने के लिए कहाः

"भूख मिटी या नहीं मिटी वह मुझसे क्यों पूछता है ? भूख मुझे कभी लगती ही नहीं। भूख और प्यास प्राणों को लगती है। तू प्राणों से ही पूछ कि तुम्हारी भूख- प्यास मिटी कि नहीं। मानो दो-चार घंटे के लिए प्राणों की भूख-प्यास मिटेगी भी तो फिरसे लगेगी।

थकान भी शरीर को लगती है, बहुत-बहुत तो मन उससे तादात्म्य करेगा तो मन को लगती है। मुक्त चैतन्य को कभी भूख-प्यास नहीं लगती। जिसको कभी भूख-प्यास लगती नहीं उसको तू पूछता है कि भूख-प्यास मिटी कि नहीं ? जिसको कभी थकान छू तक नहीं सकती उसको तू पूछता है कि थकान मिटी कि नहीं ?"

"आह.... ! इस प्रक्रिया से, बातचीत में आत्मज्ञान बोलने वाले तो मेरे गुरुदेव भगवान ऋभु थे।" निदाघ उनकी ओर ठीक से निहारते हुए बोलाः

"आप तो मेरे गुरु लगते हैं।"

"लगते क्या हैं ? हैं ही नादान ! मैं ऋभु ही हूँ। तूने गृहस्थ के कुटिल व्यवहार में आत्मविद्या को भुला दिया। जिज्ञासा की तीव्रता के अभाव में ऐसा दिव्य ज्ञान भुला दिया तूने ?"

कभी-कभी किसी के घर वर्षों के बाद संतति होती है और दैवयोग से चल बसती है तब गृहस्थ में अगर ठीक समझ होती है, अध्यात्म की जिज्ञासा होती है तो वह भगवान को धन्यवाद देता हैः 'वाह प्रभु ! तेरी अमानत तुनू वापस सँभाल ली। तेरी मर्जी पूर्ण हो। अब हम भी तेरा भजन करेंगे।' इस प्रकार संतान का स्नेह भगवान में लगा देते हैं।

मूढ़ लोग पुत्र का स्नेह फिर कुत्ते और बिल्ली पालने में लगा देते हैं। खुद तो जूठा भोजन या मांस नहीं खाते पर कुत्ते बिल्ली को मांस खिलाने में रूकते भी नहीं। वे उनको अपने साथ रखते हैं, साथ में सुलाते हैं। उन प्राणियों को अपने साथ कार में घुमाते हैं। उनको और तो क्या कहें.... वे अगले जन्म में चार पैरवाला होने की भूमिका बना रहे हैं।

जिनका प्यार बिल्ली और कुत्तों में बँटा हुआ है वे अपना पूरा प्यार परमात्मा को दे नहीं सकते। जो अपना पूरा प्यार परमात्मा को नहीं दे सकते वे परमात्म-तत्त्व को जानने में असमर्थ रह जाते हैं।

कहाँ प्यार करना चाहिए, कहाँ स्नेह रखना चाहिए, कहाँ कैसा व्यवहार करना चाहिए इसकी समझ भी गुरु और शास्त्रों से मिलती है।

'टीपु....टीपु...मीनी...मीनी....' करके तुम अपना आयुष्य मत गँवाओ। तुम तो भगवन्नाम जपकर अपने आयुष्य को सार्थक करो।

निदाघ ने गुरुदेव से क्षमायाचना की। ऋभु मुनि उपदेश देकर चल दिये। कुछ वर्ष और बीत गये। विचरण करते-करते ऋभु एक बार फिर वहीं पधारे अपने मन्द शिष्य की खबल लेने।

उन दिनों में राजा की सवारियाँ नगर के राजमार्ग से निकला करती थी। बड़ी धूमधाम और बड़ा ठाठ रहता था। राजाओं को कोई कहने वाला नहीं था. सत्ता जब एक हत्थु होती है तब अन्धाधुँधी चलती है। रातोरात पार्टी बदल जाती है। रातोरात चीज-वस्तुओं के भाव बढ़ जाते हैं। राज-रजवाड़ों में राजाशाही ठाठ चलते रहते हैं, बिना कारण बड़े-बड़े तमाशे किये जाते हैं।

अज्ञानी को जो कुछ मिलेगा उससे वह दूसरों का शोषण ही करेगा। उसको नियंत्रण करने वाला कोई नहीं होगा, उसके संस्कार भोग भोगने में दूसरों का और खुद अपना भी शोषण करता है। अपने शरीर के साथ , अपनी इन्द्रियों के साथ , अपने पेट के साथ, अपने आयुष्य के साथ जुल्म करता है।

बुद्धिमानों का कहना है कि लोग भूखा रहने से इतने नहीं दुर्बल होते या नहीं मरते जितना ज्यादा खाने से दुर्बल होते हैं और मरते हैं। पहले का किया हुआ भोजन ठीक से पचा नहीं और दूसरा पेट में ठूँस दिया। बिन जरूरी खाते हैं इसलिए ज्यादा बीमार होते हैं। हकीम, डॉक्टर या हितैषी होते हैं तो उपवास कराके उसका रोग मिटाते हैं। अन्यथा तो उपवास को मजाक में उड़ा देते हैं।

जब हररोज नियत टाईम पर भूख लगती है तो वह असली भूख नहीं है। वह तो नाड़ियों की प्रक्रिया है। अंगों की दैनिक आदत है। वह 'रीधम' से अपना काम करती है। असली भूख जल्दी से मरती नहीं और नकली भूख लम्बे समय तक टिकती नहीं।

कभी-कभी एकाध उपवास करने से नाड़ी-शोधन होता है। होजरी में, नस-नाड़ियों में, मस्तिष्क में जो पड़ा हुआ मल होता वह स्वाहा हो जाता है। कभी-कभी भूख के समय अन्न नहीं मिलता है तो आँखों में अन्धकार छा जाता है, चक्कर आने लगते हैं, थकान हो जाती है। तब समझो कि वह मल तेजी से भस्म हो रहा। उन दिनों में नींबू और शहद का पानी पीना चाहिए। एकाध उपवास पन्द्रह दिन में तो अवश्य करना चाहिए। इससे शरीर का तंत्र ठीक चलता है।

भोगी भोग भोगता है तो भोग्य का भी शोषण करता है और अपना भी शोषण करता है। ऐसे ही जो आत्मदेव को भुला बैठा है वह समय पाकर अपने से तो अन्याय करता ही है, अपने सम्बन्ध में आनेवालों से भी अन्याय करता है।

जो अपने आत्म-स्वरूप में जगा है वह अपने साथ स्नेह करता है और अपने संपर्क में आनेवालों का भी कल्याण करता है।

भगवान ऋभु ज्ञानवान थे और निदाघ संसार के सुख में फिसल रहा था। उसको पतन से थामने के लिए ऋभु मुनि बार-बार मुलाकात किया करते थे।

इस बार मुनि पधारे तो नगर में राजा कि सवारी जा रही थी। निदाघ सवारी देखने के मजा लेने गया था। महर्षि ऋभु आकर खड़े हो गये उसके पास। देखा कि निदाघ तन्मय हो गया है सवारी देखने में। आँखों को ऐसा भोजन करा रहा है कि शायद उसके मन में आ जाए कि मैं राजा बन जाऊँ। पुण्यों के बल से राजा बन जाएगा तो फिर पुण्यों का नाश हो जाएगा। जाकर नर्क में गिरेगा। एक बार हाथ पकड़ा है तो उसको किनारे लगाना ही है।

निदाघ जहाँ राजा की सवारी देख रहा था वहाँ ऋभु मुनि आकर खड़े हो गये और पूछने लगेः

"यह सब क्या है ?"

"यह राजा की शोभायात्रा है।"

"इसमें राजा कौन और प्रजा कौन ?"

"जो ऊपर बैठा है वह राजा है और जो पैदल चल रहे हैं वे प्रजा हैं।

"राजा किसके ऊपर बैठा है ?"

"राजा हाथी पर बैठा है।"

"हाथी कौन है ?"

"राजा जिसके ऊपर बैठा है वह चार पैरवाला पर्वतकाय प्राणी हाथी है। महाराज ! इतना भी समझते नहीं ?" निदाघ ये प्रश्न सुनकर अब चिड़ने लगा था। ऋभु तो स्वस्थ चित्त से पूछे ही जा रहे थे।

हाँ राजा जिसके ऊपर बैठा है वह हाथी है। हाथी के ऊपर जो बैठा है वह राजा है। अच्छा तो राजा और हाथी में क्या फर्क है ?"

अब निदाघ की कामना छटकी। छलांग मारकर भगवान ऋभु के कन्धे पर चढ़ गया और गुस्से में आकर बोलाः

"मैं तुम पर चढ़ गया हूँ तो मैं राजा हूँ और तुम हाथी हो। यही हाथी और राजा में फर्क है।"

फिर भी शांत आत्मा, क्षमा की मूर्ति ब्रह्मवेत्ता की भगवान ऋभु निदाघ से कहने लगेः

"इसमें "मैं" और "तुम" किसको बोलते हैं ?"

निदाघ सोच में पड़ गया। प्रश्न अटपटा बन रहा था।

"जो ऊपर है वह 'मैं' है और नीचे है वह 'तुम' है।"

"मैं और तुम में क्या फर्क है ? हाथी भी पाँच भूतों का है, राजा भी पाँच भूतों का है। मेरा शरीर भी पाँच भूतों का है और तुम्हारा शरीर भी पाँच भूतों का है। एक ही वृक्ष की दो डालियाँ आपस में टकराती हैं अथवा विपरीत दिशा में जाती हैं पर दोनों में रस एक ही मूल से आता है। इसी प्रकार मैं और तुम एक ही सत्ता से स्फुरित होते हैं तो दोनों में फर्क क्या रहा ?"

निदाघ चौंका।

"अरे ! ये बात-बात में आत्मज्ञान का अमृत परोसनेवाले मेरे गुरेदव जी ही हो सकते हैं, दूसरे का यह काम नहीं। उनके समान अद्वैत-संस्कार से सम्पन्न चित्त और किसी का नहीं है।"

झट से नीचे उतरा और गौर से निहारा तो वे ही गुरुदेव निदाघ चरणों में लिपट गयाः

"गुरुदेव...! गुरुदेव....!! क्षमा करो। घोर अपराध हो गया। कैसा भी हूँ..... आपका बालक हूँ। क्षमा करो प्रभु !"

"क्षमा माँगने वाले में और क्षमा देने वाले में मूल धातु कौन-सी है ?" ऋभु मुनि वही तत्त्व-चर्चा आगे बढ़ाते हुए बोले।

"हे भगवन ! क्षमा माँगने वाले में और क्षमा देने वाले में वही मूल धातु है , वही आत्मदेव है, वही परब्रह्म परमात्मदेव है जिसमें मुझे जगाने के लिए आप करुणावान तत्पर हुए हैं।"

"बेटा ! तुझे जो ज्ञान मिला था उसमें तेरी तत्परता न होने के कारण इतने सारे वर्ष व्यर्थ में बीत गये। मैंने तुझे पहले व्यतिरेक मार्ग से आत्मा का उपदेश किया था। उसे तुम भूल गये। अब अन्वय मार्ग से उपदेश किया है, इस पर परिनिष्ठित हो जाओ। यदि इन दोनों मार्गों पर विचार करोगे तो संसार में रहकर भी तुम इससे अलिप्त रहोगे।"

निदाघ ने बड़ी स्तुति की। ऋभु मुनि की कृपा से निदाघ आत्मनिष्ठ हो गया।

आत्मलभात् परं लाभं न विद्यते।

ऋभु मुनि इतने क्षमाशील थे कि निदाघ उनके कन्धे पर चढ़ बैठा फिर भी मुनि के चित्त में क्षोभ नहीं हुआ। उनकी इस क्षमाशीलता को सुनकर सनकादि गुरुओं को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने ब्रह्माजी के सामने इनकी महिमा गायी और इनका नाम क्षमा का एक अक्षर लेकर ऋभुक्ष रख दिया। तबसे साम्प्रदायिक लोग इन्हें ऋभुक्षानन्द के नाम से स्मरण करते हैं।

आज भी वे महापुरुष न जाने किस-किस रूप में, किस-किस जगह पर, कैसे-कैसे विचरते होंगे और संसार के जीवों को अपने आत्म-स्वरूप में जगाकर पार लगाते होंगे ! सिर्फ एक निदाघ ही नहीं, कई निदाघों को मिले होंगे और पार लगाया होगा।

जिन लोगों को मुफ्त में आत्मज्ञान सुनने को मिलता है उनको ज्ञान का पूरा लाभ नहीं मिल पाता। उनके हृदय में ज्ञान प्रवेश ही होगा तो ज्ञान का स्वाद नहीं आयगा। जितने प्रमाण में कुछ न कुछ सेवा करके, परिश्रम करके ज्ञान लेते हैं उतने अंश में ज्ञान फलता है। निदाघ को मुफ्त में ज्ञान मिला था इसलिए पचा नहीं। जिनको बिना परिश्रम के आध्यात्मिक शक्तियाँ मिलती हैं वे ज्यादा समय तक टिकती नहीं, पचती नहीं, अजीर्ण होकर निकल जाती हैं। फिर वे बेचारे ऐसे के ऐसे ठंठनपाल हो जाते हैं। इसीलिए गुरुलोग अपने प्यारे शिष्यों से कड़ी सेवा करवाते हैं, परिश्रम करवाते हैं, परोपकार के कार्य करवाते हैं, तन-मन-धन-बुद्धि जो भी योग्यता

शिष्य के पास हो वह परहित में लगवाते हैं। इससे समाज का भी कल्याण होता है और शिष्य का भी परम कल्याण हो जाता है।

स्वामी प्रज्ञानंद जी महाराज बड़े उच्च कोटि के संत थे। गंगा किनारे से कुछ ही कदम दूर उनका भव्य आश्रम था। साधक भक्त वहाँ रहते थे। कभी-कभी अतिथि संत और मित्र संत भी वहाँ ठहरा करते थे।

एक बार स्वामी प्रज्ञानन्दजी किसी मित्र संत के साथ गंगाजी के बीच जाकर स्नान कर रहे थे। वहाँ उन्होंने अपने शिष्य को आवाज लगायीः

"मुक्तेश्वर....! ओ मुक्तेश्वर....!!"

मुक्तेश्वर लड़का आश्रम से भागता हुआ आया।

"गुरुजी ! क्या आज्ञा है ?"

"बेटा ! मुझे गंगाजल पीना है।"

मुक्तेश्वर आश्रम में गया। लोटा लाया। गंगा किनारे की बालू से माँजकर लोटा चकचकित किया और फिर गंगा में उतरा। गुरुजी मित्र संत के साथ जहाँ खड़े थे वहाँ जाकर लोटा पुनः धोकर गंगाजल से भरकर गुरुजी को दिया। उसको पता था कि गुरुजी बहती गंगा का जल पीते हैं। गुरुजी ने लोटे में से हाथ में जल की धारा करते हुए गंगाजल पिया। मुक्तेश्वर लोटा लेकर वापस चला गया। मित्र संत ने पूछाः

"आपको जब यहीं का गंगाजल हाथों से पीना था तो 'मुक्तेश्वर..... मुक्तेश्वर....' चिल्लाये, वह आया, वापस जाकर लोटा ले आया, बालू से साफ किया, गंगा में उतरा और यहीं से भरकर आपको दिया। आपने हाथों में ही पानी डालकर पिया। इतना सारा परिश्रम करवाया ?"

बाबाजी ने कहाः "इस बहाने उसको सेवा दी। और सेवा इसलिए दी कि उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाए ताकि ब्रह्मविद्या उसको पच जाय।"

ज्यों केले के पात में पात पात में पात।
त्यों संतन की बात में बात बात में बात।।

जब तक आत्मज्ञान में रूचि नहीं होती तब तक समझ लेना चाहिए कि अभी हमारे कषाय परिपक्व नहीं हुए। कषाय परिपक्व होना माने अन्तःकरण के दोष निवृत्त होकर अन्तःकरण की शुद्धि होना। अन्तःकरण जब शुद्ध होता है तब आत्मज्ञान में रूचि होती है।

"अन्तःकरण की शुद्धि के बिना आत्मज्ञान नहीं सुनें क्या ?"

सुनें, जरूर सुनें। आत्मज्ञान सुनेंगे तो अशुद्ध अन्त करण शुद्ध बनेगा। फिर शुद्ध अन्तःकरण में आत्मज्ञान की रूचि जगेगी।

आत्मज्ञान ऐसी औषधि है जो सब रोगों पर काम करती है। पापी से पापी आदमी भी आत्मज्ञान का सत्संग सुनने लग जाये तो धीरे-धीरे विशुद्ध होकर कहीं का कहीं पहुँच सकता है।

जप-तप-उपवास-सदाचरण आदि सबका फल यह है कि हमें आत्मज्ञान में रूचि हो जाय। क्योंकि आत्मज्ञान ही सर्वोपरि चीज है। आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया फिर कुछ पाना, कुछ जानना शेष नहीं रह जाता।

सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।

'हे अर्जुन ! संपूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं।'

(भगवद् गीताः 4.33)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रसंग-चतुष्ट्य

भगवन्नाम की महिमा

हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष दो भाई थे। ये दोनों पहले वैकुण्ठ में जय और विजय थे। शापित होकर असुर योनि में गिरे थे। हिरण्यकशिपु को भगवान विष्णु से वैर था। दानवों का देवताओं से वैर होना जन्मजात स्वाभाविक था। देवताओं को चूर्ण करने के लिए अधिक शक्ति प्रदान करना आवश्यक था। अतः हिरण्यकशिपु शक्ति प्राप्त करने के लिए तप करने मंदराचल पर्वत पर गया।

देवताओं ने सोचा कि यह असुर तप करेगा तो उसमें सामर्थ्य आ जाएगा। फिर हमें सताएगा। इसका कुछ इलाज अभी से करना चाहिए।

तप करना माने एकाग्र होना। एकाग्रता बढ़ने से सामर्थ्य आता है। जैसे बिल्लौरी काँच सूर्य के सामने स्थिर करने से सूर्य के किरण काँच की दूसरी तरफ केन्द्रित हो जाते हैं। सूर्य के सामान्य किरणों से कभी आग नहीं लगती जबकि बिल्लौरी काँच के द्वारा केन्द्रित हुए वे किरण आग पैदा कर सकते हैं।

ऐसे ही मन की एकाग्रता से आदमी में सामर्थ्य आता है। वह एकाग्रता चाहे सुर करे, असुर करे चाहे मानव करे, सामर्थ्य तो आयेगा ही। यह ईश्वर की आदि नीति है।

देवता अपने गुरु बृहस्पति के पास गये और कुछ उपाय करने के लिए प्रार्थना की। सुर-गुरु ने सोचा, हिरण्यकशिपु के तप में विघ्न तो डालना ही चाहिए पर ऐसा विघ्न डाला जाए कि उस असुर का भी कल्याण हो। बृहस्पति ज्ञानी थे न ! नानक जी ने ठीक ही कहा हैः

ब्रह्मज्ञानी ते कछु बुरा न भया।

जैसे माँ बच्चे को पुचकारती है , लाड़-प्यार करती है, चॉकलेट देती है, मिठाई खिलाती है इसमें वात्सल्य है, अपनत्व का भाव है। थप्पड़ मारने में भी वही मातृत्व का प्रकटीकरण होता है। ऐसे ही पूरा विश्व ब्रह्मज्ञानी का बालक मात्र है। उनसे जो भी चेष्टाएँ होती हैं, जीवों के कल्याण

के निमित्त ही होती हैं। जैसे आदमी अपने शरीर के विभिन्न अंगों से विभिन्न व्यवहार क रता है, उस व्यवहार में बाहर से विषमता दिखेगी पर वह विषमता नहीं है क्योंकि सब अंगों से उसका समान भाव से अपनत्व है। सब अंग उसे प्यारे हैं। ठीक वैसे ही ब्रह्मज्ञानी पूरे विश्व का आत्मा है, विश्वात्मा है। पूरे विश्व के साथ उसका समान भाव से अपनत्व होता है। इससे उसके द्वारा सहज भाव से जो भी चेष्टा होगी वह सबके कल्याण के लिए ही होगी।

हिरण्यकशिपु मन्दराचल पर्वत पर जिस पेड़ के नीचे तप करने बैठा था उस पेड़ पर बृहस्पति शुकरूप धारण करके बैठ गये। ज्यों ही असुर ध्यान करने लगा तो शुक (तोता) 'नारायण.... नारायण.... नारायण... नारायम....' का नामोच्चार करने लगा। हिरण्यकशिपु चौंकाः "अरे, यह तो मेरे शत्रु का नाम है !" वह तोते पर चिढ़ गया। उठ कर भगा दिया। फिर ध्यान करने बैठा तो तोता वापस आकर बैठ गया और 'नारायण... नारायण.... नारायण....' की रट लगा दी। असुर ने फिर उसे भगाया, कंकड़-पत्थर फेंके पर तोता कहाँ मानने वाला था ? एक डाल से दूसरी डाल, दूसरी से तीसरी। अधिक होता तो पेड़ छोड़कर उड़ान ले लेता और चक्कर लगाकर पुनः आ जाता। फिर वही नारायण...... नारायण....... की रट।

पक्षी कितने निर्भीक होते हैं ! क्योंकि उनको अपनें पंख पर पूरा भरोसा होता है। वृक्ष की डाल हवाओं से कैसी भी हिलती हो पर वे उस पर निडर होकर बैठ जाते हैं, किल्लोल कर लेते हैं। तुम कंकड़-पत्थर लेकर उनके पीछे पड़ो फिर भी वे घबड़ाते नहीं।

जानते हैं कि मौका आने पर पंख फैलाकर उड़ जाएंगे। अपने पंख पर भरोसा होने के कारण ही वे कैसी भी परिस्थितियों में किल्लोल करके मजा ले लेते हैं।

साधक को भी अगर ज्ञान और वैराग्यरूपी दो पँख मिल जायें तो हिलती हुई संसारवृक्ष की डालियों पर भी जीने का मजा ले लेता है। संसारवृक्ष की परिस्थितियाँ रूपी डालें सदा हिलती ही रहती हैं। हम लोगों को विचार और ध्यानरूपी दो पंख मिल जाय तो हम भी निश्चिन्त जीवन जी सकते हैं, सुखमय जीवन, आनन्दमय जीवन जी सकते हैं।

अपने वे पंख अभी फूटे नहीं, फूटे हैं तो उड़ान लेने का अभ्यास नहीं करते, अन्यथा दुनियाँ की ऐसी कोई मुसीबत नहीं जो तुमको गिरा सके, भयभीत कर सके, चिन्तित कर सके। मौका आने पर उन दो पंखों से आत्म-स्वरूप में उड़ान ले लो तो तत्काल सब आपदाओं से पार। फिर संसार में आनन्द से जीना तुम्हारे लिए दुष्कर नहीं रहेगा।

वह तोता 'नारायण.... नारायण...' रटता है, हिरण्यकशिपु उसे बार-बार भगाता है। तोता फिर डाल पर आकर बैठ जाता है। बृहस्पति डरनेवाले तो थे नहीं। उनका तो पक्का इरादा था कि कैसे भी करके सुरों का, असुरों का कल्याण करना है।

इन्कार भी आमंत्रण देता है। हिरण्यकशिपु 'नारायण' नाम सुनना नहीं चाहता था। शत्रु का नाम कैसे सुने ? क्यों सुने ? और वह भी एकान्त में ध्यान के समय ? पर बार-बार वही नाम

सुनाई पड़ता था। तोता भी पक्का था। भागता ही न था। पूरे पहाड़ और जंगल में उसे यह एक ही पेड़ दिखाई देता था !

हिरण्यकशिपु का 'मूड' खराब हो गया। सोचा कि आज मुहूर्त अच्छा नहीं है। अपशकुन हो रहा है।

नारायण नाम का कानों में पड़ना उसके लिए अपशकुन था। भगवान का नाम अच्छा नहीं लगना उसी का नाम तो असुर है।

हिरण्यकशिपु तप करना छोड़कर जल्दी ही वापस घर लौट आया। उसकी पत्नी क्यादू ने देखा कि स्वामी जल्दी वापस लौट आये ! ऐसे जल्दी लक्ष्य छोड़कर वापस आ जाएँ ऐसे नहीं हैं। फिर भी कुछ बोली नहीं क्योंकि जानती थी अपने पति का अकड़ू स्वभाव। सयानी महिला थी, असुर की गृहिणी होते हुए भी हृदय में भगवद्-भाव था।

कयादू ने पति को नहाने-धोने की व्यवस्था कर दी। स्नान करवाया। बढ़िया मजेदार रसोई बनाकर भोजन कराने लगी। देखा कि पति की थकान मिटी है, भोजन से तृप्ति हुई है, कुछ खुशी आयी है चेहरे पर। तब कयादू ने बात चलायी।

स्त्री में बड़ी शक्ति है। अगर वह बुद्धिमान हो तो अपने पति को मोड़ सकती है, अपना मनोवांछित कार्य उससे करवा लेती है। अगर स्त्री सत्संगी हो, सत्कृत्य किये हों, बुद्धिमान हो तो अपने पति को कल्याण के मार्ग पर भी ले जा सकती है। स्त्री में सहनशक्ति, मधुर भाषण आदि योग्यताएँ तो होती ही हैं। उसमें बुद्धिमानी और सत्संग का सहारा मिल जाय, पति को मोड़ने की कला आ जाय तो पति को भगवान के रास्ते लगाकर छोड़ेंगी।

जो स्त्रियाँ पति के घर आते ही उसको शिकायतें करने लग जाती हैं, घर की समस्याएँ सुनाने लग जाती हैं, घर के अभाव और आवश्यकताएँ सुनाने लग जाती हैं वे स्त्रियाँ अपने सुख की, पति के स्वास्थ्य की और घर की शांति की शत्रु होती हैं। पति बाहर से थका, भूखा, प्यासा आया हो तब सबसे पहले आवश्यकता हो तो पानी पिलाना चाहिए, फिर नहाने-धोने देना चाहिए, खिलाना पिलाना चाहिए। वह जब ठीक स्वस्थता महसूस करे तभी घर की अन्य बातें करनी चाहिए।

कयादू कुशल महिला थी। पति को कैसे खुश करना, यह जानती थी।

लोभी को धन से वश किया जाता है, मूढ़ को पुचकार से वश किया जाता है, अहंकारी को प्रशंसा से वश किया जाता है.... और गुरु को निर्दोष प्यार से वश किया जाता है।

कयादू अपनी वाणी में प्रशंसा की गोली डाल कर पति से कहने लगीः

"नाथ ! आपका शौर्य-वीर्य तो.... आहा ! सारा असुर कुल आपसे काँपता है। देवता भी आपसे भय खाते हैं।

मैं कभी की सोच रही हूँ कि आप तो तपस्या करने मन्दराचल पर्वत पर गये थे, फिर उसी दिन वापस लौट आये तो जरूर कोई रहस्य होगा। कौन-सी बात थी नाथ ! मुझे बताइये न ?"

"अरे कुछ नहीं..... कुछ नहीं। एक तोता 'नारायण.... नारायण....' नाम का रटन कर रहा था। उसको भगाऊँ तो बोले 'नारायण.... नारायण....'। कंकड़ फेंकूँ तो बोले 'नारायण....नारायण....'।"

कयादू ने देखा कि अब कल्याण होने वाला है। किसी भी बहाने ये नारायण का नाम तो ले रहे हैं ! वहाँ कई बार सुना और यहाँ स्वयं उच्चारण कर रहे हैं। कयादू ने युक्ति लड़ाईः

"अच्छा ! वह तोता ऐसा बोल रहा था ? पतिदेव ! वह क्या बोल रहा था ?"

"तोता बोल रहा था 'नारायण.... नारायण.... नारायण...'। वह मेरे शत्रु का नाम ले रहा था।"

"पक्षी कोई ऐसा बोलता होगा ? नहीं.... नहीं...." कयादू अनजान सी होकर बोली।

"हाँ हाँ.... वह 'नारायण.... नारायण.....' ही बोल रहा था।"

कयादू की युक्ति कारगर हो रही थी। किसी भी बहाने पति से नारायण का नामोच्चार करवाये जा रही थी।

"अच्छा ! तोता मनुष्य की तरह बोलता था ? कैसी भाषा बोलता था वह ?"

"बस ऐसे ही.... 'नारायण..... नारायण..... नारायण.....' कर रहा था।"

कयादू ने पति को कुछ देर और बातों में लगाया। फिर बोलीः "तोता और 'नारायण.... नारायण....' जप करे ? क्या पता....।"

"हाँ हाँ सही बात है। वह बिल्कुल ऐसा ही बोलता था।"

"कैसा बोलता था ?" आश्चर्य-मिश्रित भाव से कयादू ने पूछा।

"बस वहीः 'नारायण.... नारायण.... नारायण.....'।"

कयादू ने देखा कि पतिदेव ने पचासों बार भगवान का नाम ले लिया है भोजन करते-करते। भोजन पूरा हुआ तो पति को हाथ धुलाये, मुखवास दिया और शयनकक्ष में चरणसेवा करने लगी।

पत्नी के हाथ चरणसेवा में लगें और पुरुष का मन जीता हुआ न हो तो स्वाभाविक है पुरुष को काम घेर लेता है। ऐसे मौके पर कामासक्त पुरुष से जो काम करवाना हो वह स्त्री करवा सकती है। स्त्री अगर चतुर है तो चाहे कैसी प्रतिज्ञा पति से करवा लेती है। कयादू इस बात को ठीक से जानती थी। वह चरणसेवा करते करते पूछने लगीः

"नाथ ! फिर से बताओ न ? वह तोता क्या बोल रहा था ?"

"प्रिये ! वह 'नारायण.... नारायण.... नारायण.... नारायण.....' बोल रहा था।" अब एकान्त में पत्नी के हाथों चरणसेवा के समय 'प्रिये' शब्द के साथ 'नारायण' शब्द भी प्रियता से आने लगा था।

"कैसे कैसे, प्राणनाथ ! भोजन के समय मैंने सुना पर विश्वास नहीं आया था। अभी भी लगता है कि.... आप फिर से बताइये न ?"

"अंगने ! वह तोता 'नारायण.... नारायण... नारायण....' बोल रहा था।"

"खाली 'नारायण... नारायण....' बोलता था कि और भी कुछ कहता था ?"

"हाँ, वह ऐसा भी बोलता थाः "श्रीमन्नारायण.... नारायण..... नारायण.....श्रीमन्नारायण....नारायण....नारायण......'।"

"थोड़ी देर और बोलो न ? मेरे हृदयनाथ....! मुझे बहुत अच्छा लगता है।" कयादू ने अपना कल्याणकारी जाल फैलाया।

हिरण्यकशिपु कयादू में आसक्तचित्त होकर प्यार से 'नारायण....नारायण.... नारायण...' करने लगा। ऐसा करके 108 बार नारायण नाम का जप होने के बाद ही गर्भाधान हुआ। दूसरे दिन हिरण्यकशिपु चला गया तप करने। कृतनिश्चयी था वह असुर। 36 हजार वर्ष तप करने में लगा दिये। शरीर पर दीमक की बाँबी बन गई। उसके तप से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी आये। कमण्डलु से पानी छाँटा, संकल्प से उसे जगाया। वह जाग्रत हुआ, मिट्टी दूर कर दी और ब्रह्मा जी की स्तुति करने लगा। ब्रह्माजी बोलेः

"पुत्र ! तूने तप किया है वरदान के लिए। अब माँग ले।"

हिरण्यकशिपु बोलाः "पितामह ! मैं न देव से मरूँ न दानव से मरुँ, न मानव से मरुँ न पशु से, न पुरुष से मरुँ न स्त्री से मरुँ, न अस्त्र से मरुँ न शस्त्र से मरुँ, न दिन में मरुँ न रात में मरुँ, न ऊपर मरुँ न नीचे मरुँ, न अन्दर मरुँ न बाहर मरुँ।" इस प्रकार सारी सुरक्षाएँ खोजते हुए वरदान माँगा।

"तथास्तु।" कहकर ब्रह्माजी अन्तर्ध्यान हो गये।

जब पैदा हुआ है तो मरेगा। जायगा कहाँ ? 36 हजार वर्ष तब करने के बाद भी मरना तो पड़ेगा ही। अमर होने के लिए 36 हजार वर्ष का तप नहीं किन्तु 36 घण्टे भी अगर मैं कौन हूँ की खोज में लगा दे तो बेड़ा पार हो जाय।

हिरण्यकशिपु ने सोचा कि मैंने ऐसी शर्तें माँग ली हैं कि मेरी मृत्यु होगी ही नहीं। वह अपने नगर की ओर चल पड़ा।

उधर देवताओं ने दैत्यों पर आक्रमण किया। उनकी नगरियों को जला दिया। सुरपति इन्द्र जानता था कि कयादू के उदर में शत्रु का बीच पनप रहा है। यह दूसरा हिरण्यकशिपु पैदा होगा तो दुःख देगा। कंटकवृक्ष के मूल में ही मट्ठा डालकर खत्म कर देना चाहिए। वह कयादू को लेकर

जाने लगा। वह बेचारी गर्भवती रोती जाती थी। रास्ते में दयालु देवर्षि नारद मिले। उन्होंने इन्द्र को बहुत डाँटाः

"तुम इसे क्यों पकड़े ले जाते हो ?"

"भगवन् ! मैं स्त्रीवध नहीं करूँगा। इसके पेट में हिरण्यकशिपु का जो गर्भ है उसके उत्पन्न होने पर मैं उसे मारकर कयादू को छोड़ दूँगा।"

देवर्षि ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर कहाः

"अरे ! इसके गर्भ में परम भागवत पुत्र है। इससे तुम्हें कोई भय नहीं, इसे छोड़ जाओ।"

जिसका स्वभाव बढ़िया होता है उसकी बात देवता भी मानते हैं। जिसका स्वभाव घटिया होता है उसकी बात अपने कुटुम्बीजन भी नहीं मानते, अपने मजहबवाले भी नहीं मानते। जिसके स्वभाव में परदुःखकातरता है, परोपकार की भावना भरी है उसकी बात का प्रभाव पड़ता है।

आपके स्वभाव में अगर संयम है, मधुर भाषण है और परहित-चिन्तन है तो आपके स्वभाव का प्रभाव बहुत लोगों पर पड़ेगा।

नारदजी की बात मानकर देवेन्द्र कयादू को नारदजी के आश्रम में छोड़ गया। नारदजी आश्रम में हर रोज कथा- सत्संग सुनाते। कयादू तो कथा श्रवण करते- करते झोंके खा लेती पर उदरस्थ बालक कथा सुना करता।

हिरण्यकशिपु जब तप करके लौटा तब नारदजी ने कयादू को अपने पति के पास पहुँचा दिया। प्रह्लाद का जन्म हुआ। वह पाँच वर्ष का हुआ तब तक तो पिता ने उसे सताया, भगवान की भक्ति छुड़ाने के लिए काफी अत्याचार किये और भगवान का नृसिंहावतार हुआ।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि कयादू में गर्भाधान होने के पश्चात् हिरण्यकशिपु ने 36 हजार वर्ष तप किया। वापस लौटा और जब नृसिंहावतार हुआ, उसका संहार हुआ तब बालक प्रह्लाद केवल पाँच वर्ष का था। तो यह काल विपर्यय कैसे ?

पौराणिक कथा-वस्तु के ढंग से इसका जवाब यह है कि प्रह्लाद जब गर्भ में था तब माता कयादू को देवर्षि नारद ने प्रसन्न होकर वरदान दिया था कि तेरी इच्छा-प्रसूति होगी, तेरा बेटा भगवान का भक्त होगा।

माता जब तक आश्रम में रही तब तक प्रह्लाद गर्भ में रहा। 36 हजार वर्ष के बाद जब हिरण्यकशिपु तप करके लौटा तब प्रह्लाद का जन्म हुआ।

इस प्रसंग से स्त्रियों को चाहिए कि वे इस विषय में कयादू को अपनी गुरु बना लें। पति से कुटुम्बियों से नारायण नाम के महामंत्र का उच्चारण करवाकर अपने कुल का उद्धार करें।

ॐॐॐ

भगवान के भक्त की भक्ति में विघ्न डालने से, भक्त को सताने से अपने पुण्य शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इससे विपरीत, भगवान के भक्त को जो सहाय करते हैं उनको बड़ा पुण्य होता

है। साधारण आदमी की सेवा करने से जो पुण्य होता है उससे अनन्तगुना पुण्य भगवान के भक्त की सेवा करने से होता है। जैसे, किसी चपरासी को दूध को प्याला पिला दो, ठीक है, होगा थोड़ा सा लाभ। अगर राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री तुम्हारा दूध का प्याला पी लें तो इसका प्रभाव कुछ और होगा।

इसी प्रकार जो उन्नत भक्त हैं, ज्ञानी महापुरुष हैं उनकी सेवा में हमारा तन-मन-धन जो कुछ भी लग जाय उसका अनंत गुना लाभ होता है। सच्चे सेवक यह अनंत गुना लाभ ऐहिक जगत विषयक नहीं लेना चाहते। वे और किसी को नहीं चाहते, जिनकी सेवा करते हैं उन्हीं की प्रीति चाहते हैं। उनके होकर जीने में अपने जीवन की धन्यता का अनुभव करते हैं। ऐसे प्यारे सेवक आगे चलकर आत्मज्ञान के अधिकारी बन जाते हैं। आत्मज्ञान के लिए अधिकारी बनना पड़ता है। केवल वरदान या आशीर्वाद से आत्मज्ञान नहीं हो सकता।

वरदान से धन मिल सकता है, यश मिल सकता है, पुत्र-प्राप्ति हो सकती है, वरदान से अपमृत्यु भी टल सकती है, बहुत कुछ हो सकता है पर वरदान से आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता। आत्म-साक्षात्कार अगर वरदान से होता तो भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को वरदान दे देते कि जा, तुझे आत्मज्ञान हो जाएगा। आत्मज्ञान आत्मविचार से ही होता है। इसीलिए साक्षात् नारायण स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण उपदेश देते हैं और अर्जुन उसका मनन करता है।

उपदेश का मनन करने से पहले अर्जुन में सखा भाव था इससे उपदेश टिका नहीं। जब श्रीकृष्ण के विराट स्वरूप के दर्शन हुए तब श्रद्धा जगी, शिष्य भाव आया तब आत्मज्ञान का प्रभाव आया। गीता में कहाः

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

'जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान मनुष्य ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर वह बिना विलम्ब के तत्काल ही भगवत्प्राप्ति रूप परम शांति को प्राप्त हो जाता है।'

(भगवद् गीताः 4.39)

विश्व का सारा का सारा ऐहिक ज्ञान आत्मज्ञान की दुनियाँ में बिल्कुल छोटा है। ऐहिक ज्ञान पाकर लोग अपने को बुद्धिमान, उन्नत या ऊँचा उठा हुआ मानते हैं। ऐहिक जगत में उलझे हुए लोगों के सामने यह ठीक है पर ब्रह्मवेत्ता गुरु के सामने ऐहिक ज्ञान, ऐहिक संपदा, ऐहिक चतुराई, ऐहिक कुशलता नहीं के बराबर हो जाती है। इसीलिए ब्रह्मवेत्ता के पास कैसे जाना चाहिए यह बताते हुए गीता कहती हैः

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

'उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उनको भली भाँति दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्म-तत्त्व को भलीभाँति जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।'

(भगवद् गीताः 4.34)

'यह संसार कैसे प्रकट हुआ ? जीव को बन्धन कैसे हुआ ? मुक्ति कैसे होगी ? जन्म-मृत्यु का चक्र कैसे रुकेगा ? ईश्वर का वास्तविक स्वरूप क्या है ? ईश्वर और जीव में क्या भेद है ? ब्रह्म क्या है ? माया क्या है ?....' जब इस प्रकार के प्रश्न उठने लग जायें भीतर से, तब समझ लेना कि अब अपनी जीवन नैया किनारे लगने वाली है।

ॐ शांतिः ! ॐ शांतिः !! ॐ शांतिः !!!

गहरी शांति में डूब जायें।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

बलि के पूर्व जन्म की कथा

प्राचीन काल में एक दुर्व्यसनी और दुराचारी पातकी कितव था। वह शराब और जुए में इतना व्यस्त था कि उसका सारा जीवन अस्त व्यस्त हो गया था। जो धन मिलता वह विषय सेवन में व्यय कर दिया करता था। वह किसी गणिका में मतवाला हो गया था।

एक बार अपने जन्मदिन के प्रसंग पर वह कितव चाँदी की थाली में सुन्दर गजरे, बहुमूल्य इत्र, सुगन्धित चन्दन, पानबीड़ा आदि स्वस्तिक आकार में सजाकर अपनी प्रेयसी गणिका के पास जा रहा था। शराब तो पी ही ली थी। नशे में था। रास्ते में जरा ठोकर लगी तो गिर पड़ा। कुछ देर तक पड़ा रहा।

वह जगह संयोगवश ऐसी थी जहाँ पूर्वकाल में कोई संत महापुरुष शिवलिंग स्थापित करके उपासना करते थे, ध्यानस्थ होकर अपनी वृत्ति को शिवाकार बनाया करते थे, ब्रह्माकार बनाया करते थे। 'अपना मस्तिष्क भी शिवलिंग जैसा ही है। लिंग में शिवजी बसते हैं तो अपने मस्तिष्क में भी शिव ही बसते हैं। मैं शिव स्वरूप हूँ.... कल्याण स्वरूप हूँ.... शिवोऽहम्... शिवोऽहम्.... शिवोऽहम्...। इस प्रकार वे संत अपनी वृत्ति को व्यापक बनाया करते थे।

समय पाकर संत तो समा गये। वहाँ संत श्री को शुद्ध विचारों का गहरा प्रभाव सूक्ष्म रूप से बना रहा। ठीक उसी जगह पर वह शराबी गिर पड़ा था।

आदमी जहाँ जाता है, जहाँ बैठता है उस स्थान का प्रभाव उसके चित्त पर पड़ता है। इसी कारण से तीर्थस्थानों की महिमा है। जिन स्थानों में रहकर पूर्वकाल में किसी न किसी महापुरुषों ने साधन भजन किया, तपस्या की, अपनी वृत्ति को विराट परमात्मा में मिलाई, आत्म-चिन्तन

किया, ब्रह्मस्वरूप में जगे और सिद्धि पायी उन स्थानों का ऐसा प्रभाव बना कि अन्य लोग भी पावन होने लगे। वे स्थान आगे चलकर तीर्थस्थान बन गये। अब तो....

वह कितव गिर पड़ा तो थोड़ी देर पड़ा ही रहा शून्यवत्। उसके चित्त पर उस स्थान का प्रभाव होने लगा।

मनोवैज्ञानिक सत्य है कि आदमी जब खड़ा है तो उसका अहंकार भी खड़ा है। वह लेटा है तो अहंकार भी लेटा है, सो जाता है... नहीं के बराबर हो जाता है।

वह कितव पड़ा रहा तो अहंकार रहित सा हो गया। जहाँ पूर्वकाल में ब्रह्माकार वृत्ति के प्रचुर आन्दोलन निर्मित हुए थे उसका प्रभाव कितव में श्वासोच्छावास के द्वारा भीतर जाने लगा। उसका अन्तःकरण अनजाने में ही शुद्ध होने लगा। पाप का प्रभाव शिथिल हुआ।

वह होश में आया तो उठ बैठा। सोचने लगाः

'धिक्कार है मुझे ! एक तो धन कमाने में पाप करता हूँ। यह धन खर्च करके शराब पीकर पाप बढ़ाता हूँ। जुए में धन का अपव्यय करता हूँ। फिर पापमूर्ति गणिका का संग करता हूँ। जिसने मेरे जीवन को, मेरे स्वास्थ्य को, मेरे पुण्यों को नोच डाला ऐसी वेश्या के वहाँ आज जन्मदिन के प्रसंग पर उपहार लेकर जाना ? धिक्कार है मुझे ! यह सब मैं कहाँ जाकर भोगूँगा ? ....'

छोटी मोटी कामिनी सभी विष की बेल।
बैरी मारे दाँव से वह मारे हँस खेल।।

पश्चाताप से उसके पाप धुलने लगे। गुजराती कवि ने ठीक ही कहा हैः

हा ! पस्तावो विपुल झरणुं स्वर्गथी ऊतर्युं छे।
पापी तेमां डुबकी दईने पुण्यशाली बने छे।।

वह कितव उठा। हाथ में जो सामग्री थी वह सब दान कर दी। कथा कहती है कि उसकी मृत्यु हुई और यमपुरी में लिवा लिया गया। उसके जीवन का हिसाब, लेखा-जोखा जाँचा गया। यमराज ने कहाः

"तुमने सारा जीवन पाप में बिताया है। केवल दो ही मुहूर्त अच्छी जगह गुजारे हैं। जहाँ संत-महात्मा ने ब्रह्माकार वृत्ति बनाई थी उस स्थान में तू दो मुहूर्त रहा, दान किया। इन दो मुहूर्त के पुण्य के बदले में तुझे दो मुहूर्त (दीन घण्टे) के लिए इन्द्रासन दिया जाएगा तथा किये हुए पापों के फलस्वरूप नर्क की यातनाएँ भुगतनी पड़ेंगी। अब बताओ, पहले इन्द्रासन भोगना है कि पहले नर्क की यातनाएँ भोगनी हैं ? पसन्दगी तुम्हारी।"

कितव ने कहाः "पहले मैं इन्द्रासन भोगना चाहता हूँ।"

उसको आश्चर्य हो रहा था कि दो मुहूर्त के पुण्य के बदले में, थोड़ी देर अच्छी जगह रहने से, थोड़ी सी ममता हटाकर चीजों का दान करने से स्वर्ग का सुख मिल रहा है। उसने सोचाः दो मुहूर्त के बाद इन्द्रासन छोड़ देना है तो इन दो मुहूर्त का भी पूरा सदुपयोग कर लूँ।

वह इन्द्रासन पर बैठा और मुनिश्वरों का आवाहन करवाकर अगस्त्य मुनि को ऐरावत हाथी, विश्वामित्र को उच्चैःश्रवा घोड़ा, वशिष्ठजी को कामधेनु गौ, गालव को चिन्तामणि और कौण्डिल्य को कल्पवृक्ष दान दे दिया। अन्य ऋषियों को भी बहुत से दान दिये। स्वर्ग की जो भी विभूतियाँ थीं वे सब ब्रह्मवेत्ताओं को दे डाली। इन सब दान पुण्यों में दो मुहूर्त (तीन घण्टे) समाप्त हो गये।

चित्रगुप्त भागता-भागता आया और बोलाः "अब आपको नारकीय यातनाएँ भुगताने वाली योनियाँ नहीं मिलेंगी, क्योंकि आपके पुण्य इतने बढ़ गये हैं कि आप सम्राट बनेंगे।"

"सम्राट कैसे बनूँगा ?"

"जिनकी ब्रह्माकार वृत्ति हुई थी ऐसे संत पुरुष की जगह पर कुछ देर रहे थे, सत्कार्य किया था और यहाँ स्वर्ग में आकर भी आपने भोग नहीं भोगे। स्वर्ग के दिव्य रत्न ब्रह्मवेत्ता ज्ञानवानों को अर्पण कर दिये। अमाप आत्मा में स्थित हुए हैं ऐसे ज्ञानवानों को आपने आदरपूर्वक दिव्य वस्तुएँ अर्पण की हैं। इसलिए तुम्हारे दिव्य पुण्य हुए हैं। अमित आत्मा में टिके हुए आत्मज्ञानियों की सेवा अमित फल देती है।"

उसी पुण्य के प्रभाव से उस कितव का दूसरा जन्म परम भागवत प्रह्लाद के पुत्र महा दानवीर विरोचन के घर में सुरुचि के उदर से हुआ। विरोचन इतने बड़े दानी थे कि वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी इन्द्र के माँगने पर उन्होंने अपना सिर तक अपने हाथों से काटकर दे दिया था। विरोचन का यह दान तीनों लोकों में प्रसिद्ध है।

उन्ही महापुरुष विरोचन के घर में इस कितव का जन्म हुआ और इसका नाम बलि रखा गया। बलि भी इतने दानी बने, परहित परायण बने कि उनका प्रभाव बहुत बढ़ गया। तीनों लोकों में वे विजयी हुए।

अपने दानव सम्राट बलि को इतना प्रभावशाली देखकर सब दानव भी छाती फुलाकर घूमने लगे, मनमुख हो गये, देवों को परेशान करने लगे। देवों ने जाकर भगवान से प्रार्थना की। भगवान ने कहाः

"बलि का संहार करना संभव नहीं है क्योंकि वह इतना उदारात्मा है कि उसको युद्ध के मैदान में ललकारना उचित नहीं होगा। उसके आगे तो मुझे छोटा होकर जाना पड़ेगा।"

"भगवान वामन अवतार लेकर आये और बलि के द्वार पर पहुँचे। बलि ने भगवान को वचन दिया कि जो कुछ चाहिए, माँग लो। शुक्राचार्य ने समझाया कि ये नन्हें-मुन्ने बटुक ब्राह्मण दिख रहे हैं पर हैं ये साक्षात् विष्णु। क्षण मात्र में विराट हो जाएँगे और तुम्हारा सब कुछ ले लेंगे।"

बलि ने गौरवपूर्वक कहाः "सब कुछ लेने के लिए आखिर तो नारायण आये हैं न ? अपना सब कुछ देने से अगर नारायण संतुष्ट होते हैं तो घाटा ही क्या है ?"

बलि ने सर्वस्व श्रीहरि को अर्पण कर दिया। वास्तव में सर्वस्व श्रीहरि का ही है और श्रीहरि ही सर्वस्व बने हुए हैं। यह बात समझ में आने से ब्रह्माकार वृत्ति बनानी सुगम हो जाती है।

फूलों में महक उसी की, चंदा में चमक उसी की, सूर्य में प्रकाश उसी का, जल में रस उसी का, पृथ्वी में गंध उसी की।

नरसिंह मेहता ने ठीक ही कहा हैः

अखिल ब्रह्मांडमां एक तुं श्रीहरि।
जूजवे रूपे अनंत भासे।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

बुद्ध और विश्वसुन्दरी

बुद्ध के जमाने में एक विश्व-सुन्दरी हुई थी। उसका नाम भी था विश्वसुन्दरी और वास्तव में वह विश्वसुन्दरी थी। बहुत गर्विष्ठ। बड़े-बड़े राजा, महाराजा, उसकी मुलाकात के लिए लालायित रहते थे। वह किसी को दाद नहीं देती थी। 16-17 साल की उसकी उम्र थी। बहुत ही सुन्दर थी वह।

बुद्ध को पता चला। उसको अपने पास बुलाया और कहाः "सामने खड़ी हो जा।"

सुन्दरी एक-दो मिन्ट खड़ी रही फिर बोलीः "भन्ते ! क्या आज्ञा है ?"

"आज्ञा यह है कि तू खड़ी रह।"

बुद्ध दक्ष थे। अपने निर्वाण स्वरूप में विश्रांति पाये हुए थे। इच्छा-वासना से परे थे। कोई अपेक्षा नहीं थी उस सुन्दरी से सुख लेने की। आदमी जितनी निरपेक्ष होता है उतना उसका संकल्पबल और आत्मबल कार्यान्वित होता है। जितनी अपेक्षाएँ अधिक उतना संकल्प बल क्षीण, Will power down.

बुद्ध ने अपने संकल्प का जोर लगाया। सुन्दरी सामने खड़ी है, स्थिर..... शांत...। महसूस करने लगी कि मैं 17 साल में से बीस साल की हो गई.... पच्चीस की हो गई.... थोड़ी देर बाद देखती है तो अपनी उम्र और बढ़ रही है... तीस साल की हुई है... चालीस साल की हुई.... पैंतालीस की हुई.... यौवन शिथिल हो गया.... तन पर बुढ़ापे के चिह्न उभर आये।

सुन्दरी दंग रह गई। क्या अजीब सा अनुभव हो रहा है ! आश्चर्य !!

कुछ क्षण और बीते। वह महसूस करने लगी कि वह पचास की हो गई... पचपन की हो गई... साठ की हो गई... बाल सफेद हो गये हैं.... दाँत गिर पड़े हैं.... मुँह खोखला हो गया है....

चेहरे पर झुर्रियाँ फैल गई हैं..... कमर झुक गई है... हाथ में लकड़ी आ गई है..... मुँह फटे टाट जैसा हो रहा है। सत्तर साल की हुई... आँखों से पानी टपक रहा है.... नाक टेढ़ा हो गया है।

वह चकराई।

"अरे ! मुझे यह क्या हो रहा है ? आपने मुझे क्या दिया ?"

बुद्ध मुस्करायेः "मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ। जो आगे होने वाला है वह अभी दिख रहा है। तू जिस यौवन का आज गर्व कर रही है, विश्व-सुन्दरी होकर प्रसिद्ध हो रही है वह चमड़े का सौन्दर्य आखिर कब तक ?"

रूप दिसी मगरूर न थी हुसन ते एतरो नाज न कर।
रूप सभ संवलजा अथई रांवलजा आहिन् रंग घणा।।
मत कर रे गरव गुमान गुलाबी रंग उड़ी जावेलो।

'तू अपनी देह की आकृति पर, हाड़-मांस-चाम के देह की सुन्दरता पर गर्व करके जवानी बरबाद न कर। आखिर इस देह का कैसा हाल होने वाला है यह देख ले अभी से। सावधान हो जा। चार दिन की जवानी पर नाज मत कर। देखते-देखते जवानी कहीं की कहीं चली जाएगी। कब चली गई, पता भी नहीं चलेगा। तेरे देह का भविष्य अभी तुझे दिखा रहा हूँ जिससे तू सावधान हो जा। अपेक्षाएँ छोड़ भोग की, यश की, द्रव्य की।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

गाँधी जी की सहनशक्ति

एक बार गाँधी जी लोकल गाड़ी में चंपारण्य से बतिया गाँव जा रहे थे। वहाँ उनकी जाहिर सभा रखी गई थी। तीसरे दरजे के डिब्बे में जा रहे थे। जगह मिल गई तो वे लेट गये।

किसी स्टेशन पर गाड़ी रूकी। कोई ग्रामीण युवक उस डिब्बे में आया। गाँधी जी तो अभी सो रहे थे। उस युवक को जगह चाहिए थी। महात्माजी को लेटे हुए देखकर उसने धक्का लगाते हुए कहाः

"चल रे.... उठ जा। तेरे बाप की गाड़ी है ? लम्बे पैर पसारकर सो रहा है ! चल, सीधा होकर बैठ।"

महात्मा गाँधी तुरन्त उठ बैठे। शांति से एक ओर सरक गये। उस युवक को बैठने के लिए जगह दे दी।

वह युवक पैर पसारकर भजन आलाप कर रहा था। थोड़ी ही देर में उसने गायाः

धन धन गाँधी जी तेरा अवतार।
दुःखियों के दुःख काटनहार.... धन धन।।

यह गाँधी जी भी सुन रहे थे। गाड़ी अपनी गति से जा रही थी। बतिया गाँव के करीब गाड़ी पहुँची तो युवक गाँधी जी से बोलाः

"ऐ बूढ़े ! महात्मा गाँधी का नाम सुना है ? मैं उनका प्रवचन सुनने जा रहा हूँ। वे बहुत अच्छे इन्सान हैं। तू भी उनका दर्शन करेगा तो कल्याण हो जाएगा।" उसको पता नहीं था कि वह किसको यह सब सुनाये जा रहा है।

बतिया गाँव आया। गाड़ी रुकी। पूरा स्टेशन-यार्ड लोगों की भीड़ से भरा हुआ था। गाड़ी आते ही लोग हर्षावेश में आकर जयघोष करने लगे थे किः

"महात्मा गाँधी जी की.... जय।

महात्मा गाँधी जी की.... जय।

महात्मा गाँधी जी की.... जय।"

वह युवक गाँधी जी से कहने लगाः "देख देख....। उन महापुरुष का कैसा जयघोष हो रहा है ! ....और तू यहाँ लम्बे पैर पसार के सो रहा था। चल चल, उतर। तू भी गाँधी जी के दर्शन कर ले।"

"अच्छा, मैं भी उतरता हूँ।" मुस्कराते हुए बापू बोले।

लोगों ने जब बापू का बड़े भाव से स्वागत किया तब वह युवक फटी आँख देखता रह गया।

"अरे ! ये ही गाँधी महात्मा हैं जिनका दर्शन करने और प्रवचन सुनने को मैं निकला हूँ ? अपने गाँव से चला तो डेढ़ दिन के बाद तो रेलवे स्टेशन पहुँचा। फिर गाड़ी में बैठा। और बापू तो मेरे साथ ही थे और मैंने पहचाना तक नहीं ! इतना ही नहीं, मैंने कैसी कैसी बदतमीजी की उनके साथ ! रास्ते में उनको बुरी तरह कोसता ही रहा। फिर भी वे कुछ बोले नहीं ! बड़ी गलती हो गई मुझसे।"

सूखे बाँस की तरह वह युवक महात्माजी के चरणों में गिर पड़ाः "बापू..... बापू..! गुस्ताखी माफ करो। बड़ा अपराध हो गया। आपको पहचान नहीं पाया।" युवक का हृदय पश्चाताप से भर गया।

गाँधी जी का भी गाँधी जी तुम्हारा आत्मदेव सदा सर्वत्र तुम्हारे साथ है। दिन में कई बार उस अन्तर्यामी की अवहेलना करते हो फिर भी वह परम प्रेमास्पद कभी फरियाद नहीं करता। अगर कोई उसका स्वागत कर दे, जयघोष कर दे और हमारी भी आँख खुल जाय, उसे पहचान लें तो कितना बढ़िया हो जाय ! कितना आनन्द हो जाये !

इतने सारे साढ़े पाँच फीट के गाँधी जी भी उस युवक को नहीं दिखाई दिये, नहीं पहचाने गये। ऐसे ही अपने हृदय में छुपे हुए सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मदेव को बेचारे संसारी लोग नहीं पहचान पाते।

अज्ञात आत्मदेव के प्रति अनन्य भाव हो और कोई सदगुरु मिल जाएँ, वे जता दें कि गाँधी जी का भी गाँधी जी, बापूओं का भी बापू, देवों का भी देव, शिवों का भी शिव वह चैतन्यघन आत्मदेव तेरे साथ ही बैठा है, तो बेड़ा पार हो जाय।

मन तू ज्योति स्वरूप अपना मूल पिछान।।

वह पराया है नहीं, दूर गया नहीं, मिलन में भविष्य का वायदा नहीं फिर भी अनन्य भक्ति के अभाव से पराया लगता है, दूर लगता है और भविष्य में मिलेगा ऐसा हम लोग मानते हैं।

मूंआ पछीनो वायदो नकामो को जाणे छे काल।
आज अत्यारे अबघड़ी साधो जोई लो नगदी रोकड़ माल।।

वह नगद नारायण तुम्हारे अन्तःकरण में विराजमान है, उससे अनन्य प्रीति करो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

योगिनी कर्मावती

सत्य स्वरूप ईश्वर को पाने की तत्परता, भोग विलास को तिलांजली, विकारों का दमन और निर्विकार नारायण स्वरूप का दर्शन करने वाली उस बच्ची की यह कथा है जिसने न केवल अपने को तारा अपितु अपने पिता राजपुरोहित परशुरामजी का कुल भी तार दिया।

जयपुर सीकर के बीच महेन्द्रगढ़ के सरदार शेखावत के राजपुरोहित परशुरामजी की बच्ची का नाम था कर्मा, कर्मावती। बचपन में वह ऐसे कर्म करती थी कि उसके कर्म शोभा देते थे। कई लोग कर्म करते हैं तो कर्म उनको थका देते हैं। कर्म में उनको फल की इच्छा होती है। कर्म में कर्त्तापन होता है।

कर्मावती के कर्म में कर्त्तापन नहीं था। ईश्वर के प्रति समर्पण-भाव था। जो कुछ कराता है प्रभु ! तू ही कराता है। अच्छे काम होते हैं तो नाथ ! तेरी कृपा से हम कर कर पाते हैं। कर्मावती कर्म करती थी लेकिन कर्त्ताभाव को विलय होने का मौका मिले उस ढंग से करती थी।

कर्मावती तेरह साल की हुई। गाँव में साधु-संत पधारे। उन सत्पुरुषों से गीता का ज्ञान सुना, भगवद् गीता का माहात्म्य सुना।

अच्छे-बुरे कर्मों के बन्धन से जीव मनुष्यलोक में जन्मता है, थोड़ा सा सुखाभास पाता है, काफी मात्रा में दुःख भोगता है। जीवन के अंत में जिस शरीर से सुख-दुःख भोगता है वह शरीर तो जल जाता है लेकिन भीतर सुख पाने का, सुख भोगने का भाव बना रहता है। यह कर्त्ता-भोक्तापन का भाव तब तक बना रहता है जब तक मन से पार परमात्म-स्वरूप का बोध नहीं होता।

कर्मावती इस प्रकार की कथाएँ खूब ध्यान देकर सुना करती थी। वह इतना एकाग्र होकर कथा सुनती कि उसका कथा सुनना बन्दगी हो जाता था।

एकटक निहारते हुए कथा सुनने से मन एकाग्र होता है। कथा सुनने का महापुण्य तो होता ही है, साथ ही साथ मनन करने का लाभ भी मिल जाता है। निदिध्यासन भी होता रहता है।

कर्मावती आँखों की पलकें कम गिरे इस प्रकार ध्यान से कथा सुनती थी। दूसरे लोग कथा सुनकर थोड़ी देर के बाद कपड़े झाड़ कर चल देते और कथा की बात को भूल जाते। कर्मावती कथा को भूलती नहीं थी, कथा सुनने के बाद उसका मनन करती थी। मनन करने से उसकी योग्यता बढ़ गई। घर में कुछ अनुकूलता या प्रतिकूलता आती तो वह समझती कि जो आता है वह जाता है। उसको देखनेवाला मेरा राम, मेरा कृष्ण, मेरा आत्मा, मेरे गुरुदेव, मेरा परमात्मा एक का एक है। सुख आयेगा जायेगा, दुःख आयेगा जायेगा, मान आयेगा जायेगा, अपमान आयेगा जायेगा पर मैं चैतन्य आत्मा एकरस हूँ। ऐसा कथा में सुना था।

कथा को खूब एकाग्रता से सुनने और बाद में उसे स्मरण करके मनन करने से कर्मावती ने छोटी उम्र में खूब ऊँचाई पा ली। बातचीत में और व्यवहार में भी कथा की बात को ला देती थी। फलतः व्यवहार के द्वन्द्व उसके चित्त को मलिन नहीं करते थे। चित्त निर्मलता में , सात्त्विकता में चला जाता था।

मैं तो महेन्द्रगढ़ के उस सरदार खंडेरकर शेखावत को भी धन्यवाद दूँगा क्योंकि उसके राजपुरोहित हुए थे परशुराम और परशुराम के घर आयी थी कर्मावती जैसी बच्ची।

जिनके घर में भक्त पैदा हो वे माता-पिता तो भाग्यशाली हैं ही, पवित्र हैं ही, वे जहाँ नौकरी करते हैं वह जगह, वह ऑफिस, वह कुर्सी भी भाग्यशाली है। जिसके वहाँ वे नौकरी करते हैं वह भी भाग्यशाली हैं कि भक्त के माता-पिता उसके वहाँ आया-जाया करते हैं।

राजपुरोहित परशुराम भी भगवान के भक्त थे। संयमी जीवन था उनका। सदाचारी थे। दीन-दुःखी की सेवा किया करते थे। गुरु-दर्शन में रूचि और गुरु वचन में विश्वास रखने वाले थे। ऐसे पवित्रात्मा के वहाँ जो संतान पैदा हो वह भी तेजस्वी ओजस्वी होना स्वाभाविक है।

कर्मावती बाप से भी बहुत आगे निकल गई। कहावत है कि बाप से बेटा सवाया होना चाहिए। यहाँ तो बेटी सवाई हो गई भक्ति में।

परशुराम कभी कथा सुनने जाते कभी सरदार के काम-काज में व्यस्त रहते पर कर्मावती हररोज नियमित रूप से अपनी माँ को लेकर कथा सुनने पहुँच जाती। परशुराम कथा की बात भूल भी जाते, कर्मावती याद रखती।

कर्मावती ने घर में एक पूजा की कोठरी बना ली थी। वहाँ संसार की कोई बात नहीं, केवल माला और जप-ध्यान। उस कोठरी को सात्त्विक सुशोभनों से सजाया था। बिना हाथ-पैर

धोये, नींद से उठकर बिना स्नान किये वह उसमें प्रवेश नहीं करती। धूप-दीप-अगरबत्ती से और कभी-कभी ताजे खिले हुए फूलों से कोठरी को पावन बनाया करती, महाकाया करती। अपनी भजन की कोठऱी मानो भगवान का मंदिर ही बन गई थी। ध्यान-भजन नहीं करने वाले निगुरे कुटुम्बियों को नम्रता से समझा-बुझाकर उस कोठरी में नहीं आने देती थी। उसकी उस साधना कुटीर में भगवान की ज्यादा मूर्तियाँ नहीं थीं। वह जानती थी कि अगर ध्यान-भजन में रूचि न हो तो वे मूर्तियाँ भी बेचारी क्या करेगी ? ध्यान-भजन में सच्ची लगन हो तो एक ही मूर्ति काफी है।

साधक अगर एक ही भगवान की मूर्ति या गुरुदेव के चित्र को एकटक निहारते-निहारते आंतर यात्रा करे तो 'एक में ही सब है और सब में एक ही है' यह ज्ञान होने में सुविधा रहेगी। जिसके ध्यान-कक्ष में, अभ्यास-खण्ड में या घर में बहुत सारे देवी-देवताओं के चित्र हों, मूर्तियाँ तो समझ लेना, उसके चित्त में और जीवन में काफी अनिश्चितता होगी ही। क्योंकि उसका चित्त अनेक में बँट जाता है। एक में पूरा भरोसा नहीं रखा।

कर्मावती ने साधन-भजन करने का निश्चित नियम बना लिया था। नियम पालने में वह पक्की थी। जब तक नियम पूरा न हो तब तक भोजन नहीं करती। जिसके जीवन में ऐसी दृढ़ता होती है वह हजारों विघ्न-बाधाओं और मुश्किलों को पैर तले दबाकर आगे निकल जाता है।

कर्मावती 13 साल की हुई। उस साल चतुर्मास करने के लिए संत प धारे। कर्मावती का एक दिन भी कथा सुनना चूकी नहीं। कथा- श्रवण के सार रूप उसके दिल- दिमाग में निश्चय दृढ़ हुआ कि जीवनदाता को पाने के लिए यह जीवन मिला है , और कोई गड़बड़ करने के लिए नहीं है। परमात्मा को नहीं पाया तो जीवन व्यर्थ है।

न पति अपना है न पत्नी अपनी है, न बाप अपना है न बेटे अपने हैं। न घर अपना है न दुकान अपनी है। अरे यह शरीर तक अपना नहीं तो और की क्या बात करें ? शरीर को भी एक दिन छोड़ना पड़ेगा, स्मशान में उसे जलाया जायेगा।

कर्मावती के हृदय में जिज्ञासा जगी कि शरीर जल जाय उसके पहले मेरे हृदय का अज्ञान कैसे जले ? मैं अज्ञानी रहकर बूढ़ी हो जाऊँ, आखिर में लकड़ी टेकती हुई, रूग्ण अवस्था में अपमान सहती हुई, कराहती हुई बुढ़ियाओं की नाई मरूँ यह उचित नहीं।

कर्मावती कभी-कभी वृद्धों को, बीमार व्यक्तियों को देखती और मन में वैराग्य लाती कि मैं भी इसी प्रकार बूढ़ी हो जाऊँगी, कमर झुक जायेगी, मुँह बोखला हो जायेगा। आँखों से पानी टपकेगा, दिखाई नहीं देगा, सुनाई नहीं देगा। शरीर शिथिल हो जायेगा। कोई रोग हो जायेगा तो और मुसीबत।

किसी की मृत्यु होती तो कर्मावती यह देखती, जाती हुई अर्थी को निहारती। अपने मन को समझातीः "बस ! यही है शरीर का आखिर अंजाम ! जवानी में सँभला नहीं तो बुढ़ापे मे

दुःख भोग-भोगकर आखिर मरना ही है। राम.....! राम....!! राम.....!!! मैं ऐसी नहीं बनूँगी। मैं ऐसी जिन्दगी नहीं बिताऊँगी। मैं ऐसी संसारी दादी माँ, नानी माँ नहीं बनूँगी। मैं तो बनूँगी, भगवान की जोगिन मीराबाई। मैं तो मेरे प्यारे परमात्मा को रिझाऊँगी।'

कर्मावती कभी वैराग्य की अग्नि में अपने को शुद्ध करती है कभी परमात्मा के स्नेह में भाव-विभोर बन जाती है, कभी प्यारे के वियोग में आँसू बहाती है कभी सूनमून होकर बैठी रहती है। मृत्यु तो किसी के घर होती है और कर्मावती के हृदय के पाप जलने लगते हैं। उसके चित्त में विलासिता की मौत हो जाती है। संसारी तुच्छ आकर्षणों का दम घुट जाता है। हृदय में भगवद् भक्ति का दीया जगमगा उठता है।

किसी की मृत्यु में भी कर्मावती के हृदय में भक्ति का दीया जगमगाने लगता और किसी की शादी हो तभी भी भक्ति का दीया ही जगमगाता। वह ऐसी भावना करती किः

मैं ऐसे वर को क्यों वरूँ जो उपजे और मर जाय।
मैं तो वरूँ मेरे गिरधर गोपाल मेरे चूडलो अमर हो जाय।।

मीरा ने इसी भाव को प्रकट कर, दुहराकर अपने जीवन को धन्य कर लिया था।

कर्मावती ने भगवद् गीता की महिमा सुन रखी थीः

एक ब्राह्मण युवक था। उसने अपना स्वभाव-जन्य कर्म तप नहीं किया। केवल विलासी और दुराचारी जीवन जिया। जो आया सो खाया, जैसा चाहा ऐसा भोगा। कुकर्म किये। मरकर दूसरे जन्म में बैल बना। किसी भिखारी के हाथ लगा। वह भिखारी बैल पर सवारी करता, बस्ती में घूम-फिरकर भीख माँगकर अपना गुजारा चलाता।

दुःख सहते-सहते बैल बूढ़ा हो गया। शरीर की शक्ति क्षीण हो गई। बोझ ढोने के काबिल नहीं रहा। भिखारी ने बैल को छोड़ दिया। रोज-रोज व्यर्थ में चारा कहाँ से खिलाये ? बैल इधर-उधर भटकने लगा। भूखा-प्यासा। कभी कहीं कुछ रूखा-सूखा मिल जाता तो खा लेता। कभी लोगों के डण्डे खाकर ही रह जाना पड़ता।

बारिश के दिन आये। बैल कहीं कीचड़ के खड्डे में उतर गया, फँस गया। रगों में ताकत नहीं थी। फिर भी छटपटाने लगा तो और गहरा उतरने लगा। पीठ की चमड़ी फट गई। लाल धब्बे दिखाई देने लगे तो ऊपर से कौए चोंचे मारने लगे। मक्खियाँ भिनभनाने लगीं। निस्तेज, थका, हारा, माँदा बूढ़ा बैल अगले जन्म में खूब मजा लिया था-अब सजा भोग रहा है। अब तो प्राण निकले तभी छुटकारा हो।

वहाँ से गुजरते लोग दया खाते कि बेचारा बैल ! कितना दुःखी है ! हे भगवान ! उसकी सदगति हो जाय! वे लोग अपने छोटे-मोटे पुण्य प्रदान करते फिर भी बैल की सदगति नहीं होती थी।

कई लोगों ने बैल को खड्डे से बाहर निकालने की कोशिश की, पूँछ मरोड़ा, सींगों में रस्सी बाँधकर खींचातानी की लेकिन कोई लाभ नहीं। बेचारे बैल को और परेशान करके थक कर चले गये।

एक दिन बड़े-बूढ़े लोग आये। लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। बैल के प्राण नहीं निकल रहे हैं, क्या किया जाय ? उस टोले में एक वेश्या भी थी। उसने संकल्प किया।

वह हर रोज सुबह तोते के मुँह से टूटी-फूटी गीता सुनती। समझती तो नहीं फिर भी भगवद् गीता के श्लोक सुनती।

भगवद् गीता आत्मज्ञान देती है, आत्मबल जगाती है, गीता वेदों का अमृत है। उपनिषदरूपी गायों को दुहकर गोपालनन्दन श्रीकृष्ण ग्वाले ने गीतारूपी दुग्धामृत अर्जुन को पिलाया है। वह पावन गीता हररोज सुबह पिंजरे में बैठा हुआ तोता ललकारता था और वह सुनती थी। वेश्या ने इस गीता श्रवण का पुण्य बैल की सदगति के लिए अर्पण किया।

जैसे ही वेश्या ने यह संकल्प किया कि बैल के प्राण पखेरू उड़ गये। उसी पुण्य के प्रभाव से वह सोमशर्मा नामक ब्राह्मण के घर बालक होकर पैदा हुआ।

बालक जब 6 साल का हुआ तो उसके यज्ञोपवीत आदि संस्कार किये गये। माता-पिता ने कुल-धर्म के पवित्र संस्कार दिये। उसकी रूचि ध्यान-भजन में लगी। आसन, प्राणायाम, ध्यानाभ्यास आदि करने लगा। योग में तीव्रता से प्रगति कर ली और 18 साल की उम्र में ध्यान के द्वारा अपना पूर्वजन्म जान लिया। उसको आश्चर्य हुआ कि ऐसा कौन सा पुण्य उस बाई ने अर्पण किया जिससे बैल की नारकीय अवस्था से मुक्ति होकर जप-तप करने वाले पवित्र ब्राह्मण के घर जन्म मिला ?

ब्राह्मण युवक पहुँचा वेश्या के घर। वेश्या अब तक बूढ़ी हो चुकी थी। अपने कृत्यों पर पछतावा करने लगी थी। अपने द्वार पर ब्राह्मण कुमार को आया देखकर उसने कहाः

"मैंने कई जवानों की जिन्दगी बरबाद की है। पाप-चेष्टाओं में गर्क रहते-रहते बूढ़ी हो गई हूँ। तू ब्राह्मण का पुत्र ! मेरे द्वार पर आते तुझे शर्म नहीं आती ?"

"मैं ब्राह्मण का पुत्र जरूर हूँ पर विकारी और पाप की निगाह से नहीं आया हूँ। माता जी ! मैं तुमको प्रणाम करके पूछने आया हूँ कि तुमने कौन सा पुण्य किया है ?"

"भाई ! मैं तो वेश्या ठहरी। मैंने कोई पुण्य नहीं किया ?"

"उन्नीस साल पहले किसी बैल को कुछ पुण्य अर्पण किया था?"

"हाँ.... स्मरण में आ रहा है। कोई बूढ़ा बैल परेशान हो रहा था, प्राण नहीं छूट रहे थे बेचारे के। मुझे बहुत दया आई। मेरे और तो कोई पुण्य थे नहीं। किसी ब्राह्मण के घर में चोर चोरी करके आये थे उसमें तोते का पिंजरा भी था जो मेरे यहाँ छोड़ गये। उस ब्राह्मण ने तोते को

श्रीमद् भगवद् गीता के श्लोक रटाये थे वह मैं सुनती थी। उसका पुण्य मैंने बैल को अर्पण किया।"

ब्राह्मण कुमार को लगा कि भगवद् गीता का केवल श्रवण ही इतना लाभ कर सकता है तो उसका मनन और निदिध्यासन करके गीताज्ञान पचाया जाय तो कितना लाभ हो सकता है ! वह पूर्ण शक्ति से चल पड़ा गीताज्ञान के तरफ।

कर्मावती को जब यह गीता-माहात्म्य की कथा सुनने को मिली तो उसने भी गीता का अध्ययन चालू कर दिया। भगवद् गीता में तो प्राणबल है, हिम्मत है, शक्ति है। कर्मावती के हृदय में भगवान श्रीकृष्ण के लिए प्यार पैदा हो गया। उसने पक्की गाँठ बाँध ली कि कुछ भी हो जाये, मैं उस बाँके बिहारी के आत्म-ध्यान को अपना जीवन बना लूँगी, गुरुदेव के ज्ञान को पूरा पचा लूँगी। मैं संसार की भट्ठी में पच-पचकर मरूँगी नहीं। मैं तो परमात्म-रस के घूँट पीते-पीते अमर हो जाऊँगी।

कर्मावती ने ऐसा नहीं किया कि गाँठ बाँध ली और फिर रख दी किनारे। नहीं... एक बार दृढ़ निश्चय कर लिया और हररोज सुबह उस निश्चय को दुहराती, अपने लक्ष्य का बार-बार स्मरण करती। अपने आपको कहा करती कि मुझे ऐसा बनना है। दिन-प्रतिदिन उसका निश्चय और मजबूत होता गया।

कोई एक बार का निर्णय कर ले और फिर अपने निर्णय को भूल जाय तो उस निर्णय की कोई कीमत नहीं। निर्णय करके हररोज उसे या द करना चाहिए , दुहराना चाहिए कि हमें ऐसा बनना है। कुछ भी हो जाय, निश्चय से हटना नहीं है।

हमें रोक सके ये जमाने में दम नहीं।
हमसे जमाना है जमाने से हम नहीं।।

पाँच वर्ष के ध्रुव ने निर्णय कर लिया तो विश्वनियंता विश्वेश्वर को लाकर खड़ा कर दिया। प्रह्लाद ने निर्णय कर लिया तो स्तंभ में से भगवान नृसिंह को प्रकट होना पड़ा। मीरा ने निर्णय कर लिया तो मीरा भक्ति में सफल हो गई। प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी बापू ने निर्णय कर लिया तो ब्रह्मज्ञान में पारंगत हो गये। हम अगर निर्णय करें तो हम क्यों सफल नहीं होंगे ?

जो साधक अपने साधन-भजन करने के पवित्र स्थान में, ब्रह्ममुहूर्त के पावन काल में महान् बनने के निर्णय को बार-बार दुहराते हैं उनको महान् होने से दुनियाँ की कोई ताकत रोक नहीं सकती।

कर्मावती 18 साल की हुई। भीतर से जो पावन संकल्प किया था उस पर भीतर ही भीतर अडिग होती चली थी। वह अपना निर्णय किसी को बताती नहीं थी, प्रचार नहीं करती थी, हवाई

गुब्बारे नहीं उड़ाया करती थी अपितु सत्संकल्प की नींव में साधना के द्वारा जल-सिंचन किया करती थी।

कई भोली-भाली मूर्ख बच्चियाँ ऐसी होती है कि दो चार सप्ताह ध्यान-भजन किया, दो चार महीने साधना की और चिल्लाने लग गई कि मैं अब शादी नहीं करूँगी, मैं अब साध्वी बन जाऊँगी, संन्यासिनी बन जाऊँगी, साधना करूँगी। साधन-भजन की शक्ति बढ़ी नहीं उसके पहले चिल्लाने लग गईं।

वे ही बच्चियाँ दो चार साल के बाद आयी। देखा तो उन्होंने शादी कर ली थी और अपना नन्हा-मुन्ना बेटा-बेटी ले आकर आशीर्वाद माँग रही थी कि मेरे बच्चे को आशिष दो कि उसका कल्याण हो। अरे ! तू तो बोलती थी शादी नहीं करूँगी, संन्यस्त लूँगी, साधना करूँगी और फिर यह संसार का झमेला ?

साधना की केवल बातें मत करो, काम करो। बाहर घोषणा मत करो, भीतर ही भीतर परिपक्व बनते जाओ। जैसे, स्वाति नक्षत्र में आकाश से गिरता जल का बूँद ग्रहण करके मछली सागर के अन्तराल में चली जाती है, जल के बूँद को पका-पकाकर मोती बना लेती है।

ऐसे ही तुम भी अपनी भक्ति की कुँजी गुप्त रखो। बाहर घोषणा मत करो। भीतर ही भीतर भक्ति की शक्ति को बढ़ने दो। साधना की बात किसी को बताओ नहीं। जो अपने परम हितैषी हों, भगवान के सच्चे भक्त हों, श्रेष्ठ पुरुष हों, सदगुरु हों, केवल उनसे ही अपनी अंतरंग साधना की बात करो। अंतरंग साधना के विषय में पूछो। अपने आध्यात्मिक अनुभव जाहिर करने से साधना का ह्रास होता है और गोप्य रखने से साधना में दिव्यता आती है।

मैं जब घर में रहता था तब युक्ति से साधन-भजन करता था। भाई को बोलता थाः थोड़े दिन भजन करने दो, फिर दुकान पर बैठूँगा। अभी अनुष्ठान चल रहा है। एक पूरा होता तो कहता, अभी एक बाकी है। फिर थोड़े दिन दुकान पर जाता। फिर उसको बोलताः "मुझे कथा में जाना है।" मैं कहताः "सुधर जाऊँगा।"

ऐसा करते-करते जब अपनी वृत्ति पक्की हो गई तब मैंने कह दियाः हम दुकान पर नहीं बैठते, जो करना हो सो कर लो। यदि पहले से ही ऐसी बगावत के शब्द बोलता तो वह कान पकड़कर दुकान पर बैठा देता।

मेरी साधना को रोककर मुझे अपने जैसा संसारी बनाने के लिए रिश्तेदारों ने कई उपाय आजमाये थे। मुझे फुसलाकर सिनेमा देखने ले जाते जिससे संसार का रंग लग जाय, ध्यान-भजन की रूचि नष्ट हो जाय। फिर जल्दी-जल्दी शादी करा दी। हम दोनों को कमरे में बन्द कर देते ताकि मैं भगवान से प्यार न करूँ और संसारी हो जाऊँ। अहाहा....! संसारी लोग साधना से कैसे-कैसे गिराते हैं। मैं भगवान से आर्तभाव से प्रार्थना किया करता था कि हे प्रभु ! मुझे बचाओ। आँखों से झर-झर आँसू टपकते। उस दयालु देव की कृपा का वर्णन नहीं हो सकता।

पहले भजन नहीं करते तो बोलतेः भजन करो.... भजन करो.....। भजन करने लगा तो बोलने लगेः रुको... रुको....। इतना सारा भजन नहीं करते। जो माँ पहले बोलती थी कि ध्यान करो। फिर वही बोलने लगी कि इतना ध्यान नहीं करो। तेरा भाई नाराज होता है। मैं तेरी माँ हूँ। मेरी आज्ञा मानो।

अभी जहाँ बड़ा विशाल भव्य आश्रम है वहाँ पहले कुछ नहीं था। भयावह कोतर, कँटीले जड़ झांखर। उस समय जब मोक्ष कुटीर बना रहे थे तो भाई माँ को बहकाकर ले आया। बोलाः "सात-सात साल चला गया था। अब गुरुजी ने भेजा है तो घर में रहो, दुकान पर बैठो। यहाँ जँगल में कुटिया बनवा रहे हो ! इतनी दूर तुम्हारे लिए रोज-रोज टिफिन कौन लाएगा ?"

माँ भी कहने लगीः "मैं तुम्हारी माँ हूँ न? तुम मातृ आज्ञा शिरोधार्य करो। ये ईंटें वापस कर दो। घर में आकर रहो। भाई के साथ दुकान पर बैठा करो।"

यह माँ की आज्ञा नहीं थी, ममता की आज्ञा थी और भाई की चाबी भराई हुई आज्ञा थी। माँ ऐसी आज्ञा नहीं देती।

भाई मुझे घर ले जाने के लिए जोर मार रहा था। भाभी भी कहने लगीः "यहाँ उजाड़ कोतरों में अकेले पड़े रहोगे ? हररोज मणिनगर से आपके भाई टिफिन लेकर यहाँ आयेंगे ?"

मैंने कहाः "ना..... ना.....। आपका टिफिन हमको नहीं चाहिए। आपके पास ही रखो। यहाँ आकर तो हजारों लोग भोजन करेंगे। हमारा टिफिन वहाँ से थोड़े ही मंगवाना है ?"

उन लोगों को यही चिन्ता होती थी कि यह अकेला यहाँ रहेगा तो मणिनगर से उसके लिए खाना कौन लाएगा ? उनको पता नहीं कि जिसके सात साल गये हैं साधना में, वह अकेला नहीं है, विश्वेश्वर उसके साथ हैं। बेचारे संसारियों की बुद्धि अपने ढंग की होती है।

माँ भरी दोपहर को समझाने आयी थी। ममता थी। यहाँ पर कोई पेड़ नहीं था , बैठने की जगह नहीं थी। विरान वांघे-कोतर थे। मोक्ष कुटीर बनी है वहाँ खिजड़े का पेड़ था। छारे लोग दारू छिपाते थे। कैसी-कैसी विकट परिस्थितियाँ थीं लेकिन हमने निर्णय कर लिया था कि कुछ भी हो, हम तो अपनी रामनाम की शराब पियेंगे, पिलाएंगे।

कर्मावती ने भी निर्णय कर लिया था लेकिन रखा भीतर ही। जगत भक्ति करे नहीं और करने दे नहीं। दुनियाँ दो रंगी है।

दुनियाँ कहे मैं दो रंगी पल में पलटी जाऊँ।
सुख में जो सोते रहे वाकुं दुःखी बनाऊँ।।

आत्मज्ञान या आत्म-साक्षात्कार तो बहुत ऊँची चीज होती है। तत्त्वज्ञानी के आगे भगवान प्रकट क्या होवे, उनका भगवान कभी अप्रकट रहता ही नहीं। आत्म-साक्षात्कारी तो स्वयं भगवद् स्वरूप हो जाते हैं। वे भगवान को बुलाते नहीं। वे जानते हैं कि रोम रोम में, अनंत अनंत

ब्रह्माण्डों में ठोस भरा है वह अपने हृदय में भी है। ज्ञानी अपने हृदय में ही ईश्वर को जगा लेते हैं, स्वयं ईश्वर स्वरूप बन जाते हैं। वे पक्के गुरु के चेले होते हैं, ऐसे-वैसे नहीं होते।

कर्मावती 18 साल की हुई। उसका साधन-भजन ठीक से आगे बढ़ रहा था। साथ ही साथ बेटी उम्रलायक होने से पिता परशुरामजी को भी चिन्ता होने लगी कि इस छोकरी को भक्ति का रंग लग गया है। अब शादी के लिए ना बोल देगी तो ? ऐसी चीजों में मर्यादा, शर्म, संकोच, खानदानी ख्यालों का वह जमाना था। कर्मावती की इच्छा न होते हुए भी पिता ने उसकी मँगनी कर दी। कर्मावती कुछ बोल नहीं पायी।

शादी का दिन नजदीक आने लगा। वह रोज परमात्मा को प्रार्थना करने लगी। सोचने लगी किः

"मेरा संकल्प तो है परमात्मा को पाने का, ईश्वर के ध्यान में तल्लीन रहने का। शादी हो जाएगी तो संसार के कीचड़ में फँस मरूँगी। अगले कई जन्मों में भी मेरे कई पति होंगे, बेटे होंगे, माता-पिता होंगे, सास-श्वसुर होंगे। मृत्यु से किसी ने नहीं छुड़ाया। मुझे अकेले ही मरना पड़ा। अकेले ही माता के गर्भ में उल्टा होकर लटकना पड़ा। यहाँ भी मेरे परिवार वाले मुझे मृत्यु से नहीं बचाएंगे।

मृत्यु आकर जब मार डालती है तब परिवार वाले सह लेते हैं, कुछ कर नहीं पाते, चुप हो जाते हैं लेकिन मृत्यु से सदा के लिए छुड़ानेवाले ईश्वर के रास्ते चलते हैं तो कोई जाने नहीं देता।

हे प्रभु ! क्या तेरी लीला है ! मैं तुझे नहीं पहचानती लेकिन तू तो मुझे जानता है न ? मैं तुम्हारी हूँ। हे सृष्टिकर्त्ता ! तू जो भी है जैसा भी है मेरे हृदय में सत्प्रेरणा दे।"

इस प्रकार भीतर ही भीतर भगवान से प्रार्थना करके कर्मावती शांत हो जाती तो भीतर से आवाज आतीः "हिम्मत रखो.... डरो नहीं.... पुरुषार्थ करो। मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ। " कर्मावती को कुछ तसल्ली सी मिल जाती।

शादी का दिन नजदीक आने लगा तो कर्मावती फिर सोचतीः "मैं कुंवारी लड़की... सप्ताह के बाद शादी हो जाएगी। मुझे घसीट के ससुराल ले जाएंगे। अब मेरा क्या होगा....?" ऐसा करके वह बेचारी रो पड़ती। अपने पूजा के कमरे में रोते-रोते प्रार्थना करती, आँसू बहाती। उसके हृदय पर क्या गुजरता था एक वह जानती थी और दूसरा जानता था परमात्मा।

शादी को अब छः दिन बचे.... पाँच दिन बचे.... चार दिन बचे...। जैसे कोई फाँसी की सजा पाया हुआ कैदी फाँसी की तारीख सुनकर दिन गिन रहा हो।

शादी के समय कन्या वस्त्राभूषण से, गहने-अलंकारों से सजाया जाता है, उसकी प्रशंसा की जाती है। कर्मावती यह सब सांसारिक तरीके समझते हुए सोच रही है किः

"जैसे बैल को पुचकार के गाड़ी में जोता जाता है, ऊँट को पुचकार के ऊँट गाड़ी में जोता जाता है, भैंस को पुचकार के, चारा खिलाकर दूध निकाला जाता है, प्राणी को फुसलाकर शिकार

किया जाता है ऐसे ही लोग पुचकार-पुचकार के अपना मनमाना मुझसे करवा लेंगे। मेरी जिन्दगी से खेलेंगे।

हे परमात्मा ! हे प्रभु ! जीवन इन संसारी पुतलों के लिए नहीं, तेरे लिए मिला है। हे नाथ ! मेरा जीवन तेरे काम आ जाय, तेरी प्राप्ति में लग जाय। हे देव ! हे दयालु ! हे जीवनदाता !....." पुकारते-पुकारते कर्मावती कर्मावती नहीं बचती थी, ईश्वर की पुत्री हो जाती थी।

जिस कमरे में बैठकर वह प्रभु के लिये रोया करती थी, आँसू बहाया करती थी वह कमरा भी कितना पावन हो गया होगा !

शादी को अब तीन दिन बचे थे.... दो दिन बच गये थे...। रात को नींद नहीं, दिन को चैन नहीं। रोते-रोते आँखें लाल हो गईं। माँ पुचकारती है, भाभी दिलासा देती है, भाई रिझाता है लेकिन कर्मावती समझती है कि यह सारा पुचकार बैल को गाड़ी में जोतने का है.....। यह सारा स्नेह संसार के घाट में उतारने का है....।

"हे भगवान ! मैं असहाय हूँ..... निर्बल हूँ... हे निर्बल के बल राम ! मुझे सत्प्रेरणा दे... मुझे सन्मार्ग दिखा।"

कर्मावती की आँखों में आँसू हैं ... हृदय में भावनाएँ छलक रही हैं और बुद्धि में द्विधा हैः 'क्या करूँ? शादी को इन्कार तो कर नहीं सकती.... मेरा स्त्री शरीर...? क्या किया जाये?'

भीतर से आवाज आयीः "तू अपने के स्त्री मत मान, अपने को लड़की मत मान, तू अपने को भगवदभक्त मान, आत्मा मान। अपने को स्त्री मानकर कब तक खुद को कोसती रहेगी? अपने को पुरुष मान कर कब तक बोझा ढोती रहेगी ? मनुष्यत्व तो तुम्हारा चोला है। शरीर का एक ढाँचा है। तेरा कोई आकार नहीं है। तू तो निराकार बलस्वरूप आत्मा है। जब-जब तू चाहेगी, तब-तब तेरा मार्गदर्शन होता रहेगा। हिम्मत मत हार। पुरुषार्थ परम देव है। हजार विघ्न-बाधाएँ आ जायें, फिर भी अपने पुरुषार्थ से नहीं हटना।"

तुम साधना के मार्ग पर चलते हो तो जो भी इन्कार करते हैं , पराये लगते हैं, शत्रु जैसे लगते हैं वे भी , जब तुम साधना में उन्नत होंगे , ब्रह्मज्ञान में उन्नत होंगे तब तुमको अपना मानने लग जायेंगे, शत्रु भी मित्र बन जायेंगे। कई महापुरुषों का यह अनुभव हैः

आँधी और तूफान हमको न रोक पाये।
मरने के सब इरादे जीने के काम आये।
हम भी हैं तुम्हारे कहने लगे पराये।।

कर्मावती को भीतर से हिम्मत मिली। अब शादी को एक ही दिन बाकी रहा। सूर्य ढलेगा... शाम होगी, रात्री होगी.... फिर सूर्योदय होगा... और शादी का दिन .... इतने ही घण्टे बीच में? अब समय नहीं गँवाना है। रात सोकर या रोकर नहीं गँवानी है। आज की रात जीवन या मौत की निर्णायक रात होगी।

कर्मावती ने पक्का निर्णय कर लियाः "चाहे कुछ भी हो जाये, कल सुबह बारात के घर के द्वार पर आये उसके पहले यहाँ से भागना पड़ेगा। बस यही एक मार्ग है, यही आखिरी फैसला है।"

क्षण..... मिनट.... और घण्टे बीत रहे थे। परिवार वाले लोग शादी की जोरदार तैयारियाँ कर रहे थे। कल सुबह बारात का सत्कार करना था , इसका इंतजाम हो रहा था। कई सगे-सम्बन्थी-मेहमान घर पर आये हुए थे। कर्मावती अपने कमरे में यथायोग्य मौके के इंतजार में घण्टे गिन रही थी।

दोपहर ही.... शाम हुई.... सूर्य ढला.... कल के लिए पूरी तैयारियाँ हो चुकी थीं। रात्रि का भोजन हुआ, दिन के परिश्रम से थके लोग रात्रि को देरी से बिस्तर पर लेट गये। दिन भर जहाँ शोरगुल मचा था, वहाँ शांति छा गयी।

ग्यारह बजे... दीवार की घड़ी ने डंके बजाये ... फिर टिक्... टिक्.... टिक्... टिक्...क्षण मिनट में बदल रही हैं... घड़ी का काँटा आगे सरक रहा है.... सवा ग्यारह..... साढ़े ग्यारह.... फिर रात्री के नीरव वातावरण में घड़ी का एक डंका सुनाई पड़ा... टिक्....टिक्....टिक्.... पौने बारह..... घड़ी आगे बढ़ी... पन्द्रह मिनट और बीते.... बारह बजे... घड़ी ने बारह डंके बजाना शुरु किया.... कर्मावती गिनने लगीः एक... दो... तीन... चार... दस... ग्यारह... बारह।

अब समय हो गया। कर्मावती उठी। जाँच लिया कि घर में सब नींद में खुर्राटे भर रहे हैं। पूजा घर में बाँकेबिहारी कृष्ण कन्हैया को प्रणाम किया ... आँसू भरी आँखों से उसे एकटक निहारा... भावविभोर होकर अपने प्यारे परमात्मा के रूप को गले लगा लिया और बोलीः "अब मैं आ रही हूँ तेरे द्वार.... मेरे लाला....!"

चुपके से द्वार खोला, दबे पाँव घर से बाहर निकली। उसने आजमाया कि आँगन में भी कोई जागता नहीं है? .... कर्मावती आगे बढ़ी। आँगन छोड़कर गली में आ गयी। फिर सर्राटे से भागने लगी। वह गलियाँ पार करती हुई रात्रि के अंधकार में अपने को छुपाती नगर से बाहर निकल गयी और जंगल का रास्ता पकड़ लिया। अब तो वह दौड़ने लगी थी। घरवाले संसार के कीचड़ में उतारें उसके पहले बाँके बिहारी गिरधर गोपाल के धाम में उसे पहुँच जाना था। वृन्दावन कभी देखा नहीं था, उसके मार्ग का भी उसे पता नहीं था लेकिन सुन रखा था कि इस दिशा में है।

कर्मावती भागती जा रही है। कोई देख लेगा अथवा घर में पता चल जायेगा तो लोग खजाने निकल पड़ेंगे .... पकड़ी जाऊँगी तो सब मामला चौपट हो जायेगा। संसारी माता- पिता इज्जत-आबरू का ख्याल करके शादी कराके ही रहेंगे। चौकी पहरा बिठा देंगे। फिर छूटने का कोई उपाय नहीं रहेगा। इस विचार से कर्मावती के पैरों में ताकत आ गयी। वह मानों , उड़ने लगी। ऐसे भागी, ऐसे भागी कि बस.... मानों, बंदूक लेकर कोई उसके पीछे पड़ा हो।

सुबह हुई। उधर घर में पता चला कि कर्मावती गायब है। अरे ! आज तो हक्के-बक्के से हो गये। इधर-उधर छानबीन की, पूछताछ की, कोई पता नहीं चला। सब दुःखी हो गये। परशुराम भक्त थे, माँ भी भक्त थी। फिर भी उन लोगों को समाज में रहना था। उन्हें खानदानी इज्जत-आबरू की चिन्ता थी। घर में वातावरण चिन्तित बन गया कि 'बारातवालों को क्या मुँह दिखायेंगे? क्या जवाब देंगे? समाज के लोग क्या कहेंगे?"

फिर भी माता-पिता के हृदय में एक बात की तसल्ली थी कि हमारी बच्ची किसी गलत रास्ते पर नहीं गयी है, जा ही नहीं सकती। उसका स्वभाव, उसके संस्कार वे अच्छी तरह जानते थे। कर्मावती भगवान की भक्त थी। कोई गलत मार्ग लेने का वह सोच ही नहीं सकती थी। आजकल तो कई लड़कियाँ अपने यार-दोस्त के साथ पलायन हो जाती है। कर्मावती ऐसी पापिनी नहीं थी।

परशुराम सोचते हैं कि बेटी परमात्मा के लिए ही भागी होगी , फिर भी क्या करूँ? इज्जत का सवाल है। राजपुरोहित के खानदान में ऐसा हो ? क्या किया जाये ? आखिर उन्होंने अपने मालिक शेखावत सरदार की शरण ली। दुःखी स्वर में कहाः "मेरी जवान बेटी भगवान की खोज में रातोंरात कहीं चली गयी है। आप मेरी सहायता करें। मेरी इज्जत का सवाल है।"

सरदार परशुराम के स्वभाव से परिचित थे। उन्होंने अपने घुड़सवार सिपाहियों को चहुँ ओर कर्मावती की खोज में दौड़ाया। घोष णा कर दी कि जंगल- झाड़ियों में, मठ-मंदिरों में, पहाड़-कंदराओं में, गुरुकुल-आश्रमों में - सब जगह तलाश करो। कहीं से भी कर्मावती को खोज कर लाओ। जो कर्मावती को खोजकर ले आयेगा, उसे दस हजार मुद्रायें इनाम में दी जायेंगी।

घुड़सवार चारों दिशा में भागे। जिस दिशा में कर्मावती भागी थी, उस दिशा में घुड़सवारों की एक टुकड़ी चल पड़ी। सूर्योदय हो रहा था। धरती पर से रात्रि ने अपना आँचल उठा लिया था। कर्मावती भागी जा रही थी। प्रभात के प्रकाश में थोड़ी चिन्तित भी हुई कि कोई खोजने आयेगा तो आसानी से दिख जाऊँगी, पकड़ी जाऊँगी। वह वीरांगना भागी जा रही है और बार-बार पीछे मुड़कर देख रही है।

दूर-दूर देखा तो पीछे रास्ते में धूल उड़ रही थी। कुछ ही देर में घुड़सवारों की एक टुकड़ी आती हुई दिखाई दी। वह सोच रही हैः "हे भगवान ! अब क्या करूँ? जरूर ये लोग मुझे पकड़ने आ रहे हैं। सिपाहियों के आगे मुझ निर्बल बालिका क्या चलेगा? चहुँओर उजाला छा गया है। अब तो घोड़ों की आवाज भी सुनाई पड़ रही है। कुछ ही देर में वे लोग आ जायेंगे। सोचने का भी समय अब नहीं रहा।"

कर्मावती ने देखाः रास्ते के किनारे मरा हुआ एक ऊँट पड़ा था। पिछले दिन ही मरा था और रात को सियारों ने उसके पेट का माँस खाकर पेट की जगह पर पोल बना दिया था। कर्मावती के चित्त में अनायास एक विचार आया। उसने क्षणभर में सोच लिया कि इस मरे हुए

ऊँट के खाली पेट में छुप जाऊँ तो उन कातिलों से बच सकती हूँ। वह मरे हुए , सड़े हुए, बदबू मारनेवाले ऊँट के पेट में घुस गयी।

घुड़सवार की टुकड़ी रास्ते के इर्दगिर्द पेड़-झाड़ी-झाँखड़, छिपने जैसे सब स्थानों की तलाश करती हुई वहाँ आ पहुँची। सिपाही मरे हुए ऊँट के पाय आये तो भयंकर दुर्गन्ध। वे अपना नाक-मुँह सिकोड़ते, बदबू से बचने के लिए आगे बह गये। वहाँ तलाश करने जैसा था भी क्या?

कर्मावती ऐसी सिर चकरा देने वाली बदबू के बीच छुपी थी। उसका विवेक बोल रहा था कि संसार के विकारों की बदबू से तो इस मरे हुए ऊँट की बदबू बहुत अच्छी है। संसार के काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर की जीवनपर्यन्त की गन्दगी से तो यह दो दिन की गन्दगी अच्छी है। संसार की गन्दगी तो हजारों जन्मों की गन्दगी में त्रस्त करेगी , हजारों-लाखों बार बदबूवाले अंगों से गुजरना पड़ेगा , कैसी-कैसी योनियों में जन्म लेना पड़ेगा। मैं वहाँ से अपनी इच्छा के मुताबिक बाहर नहीं निकल सकती। ऊँट के शरीर से मैं कम- से-कम अपनी इच्छानुसार बाहर तो निकल जाऊँगी।'

कर्मावती को मरे हुए, सड़ चुके ऊँट के पेट के पोल की वह बदबू इतनी बुरी नहीं लगी , जितनी बुरी संसार के विकारों की बदबू लगी। कितनी बुद्धिमान रही होगी वह बेटी !

कर्मावती पकड़े जाने के डर से उसी पोल में एक दिन .. दो दिन... तीन दिन तक पड़ी रही। जल्दबाजी करने से शायद मुसीबत आ जाये ! घुड़सवार खूब दूर तक चक्कर लगाकर दौड़ते, हाँफते, निराश होकर वापस उसी रास्ते से गुजर रहे थे। वे आपस में बातचीत कर रहे थे कि "भाई ! वह तो मर गयी होगी। किसी कुएँ या तालाब में गिर गयी होगी। अब उसका हाथ लगना मुश्किल है।" पोल में पड़ी कर्मावती ये बातें सुन रही थी।

सिपाही दूर-दूर चले गये। कर्मावती को पता चला फिर भी दो- चार घण्टे और पड़ी रही। शाम ढली, रात्री हुई, चहुँ ओर अँधेरा छा गया। जब जंगल में सियार बोलने लगे , तब कर्मावती बाहर निकली। उसने इधर- उधर देख लिया। कोई नहीं था। भगवान को धन्यवाद दिया। फिर भागना शुरु किया। भयावह जंगलों से गुजरते हुए हिंसक प्राणियों की डरावनी आवाजें सुनती कर्मावती आगे बढ़ी जा रही थी। उस वीर बालिका को जितना संसार का भय था , उतना क्रूर प्राणियों का भय नहीं था। वह समझती थी कि "मैं भगवान की हूँ और भगवान मेरे हैं। जो हिंसक प्राणी हैं वे भी तो भगवान के ही हैं , उनमें भी मेरा परमात्मा है। वह परमात्मा प्राणियों को मुझे खा जाने की प्रेरणा थोड़े ही देगा ! मुझे छिप जाने के लिए जिस परमात्मा ने मरे हुए ऊँट की पोल दी, सिपाहियों का रुख बदल दिया वह परमात्मा आगे भी मेरी रक्षा करेगा। नहीं तो यह कहाँ रास्ते के किनारे ही ऊँट का मरना , सियारों का माँस खाना, पोल बनना, मेरे लिए घर बन जाना? घर में घर जिसने बना दिया वह परम कृपालु परमात्मा मेरा पालक और रक्षक है।"

ऐसा दृढ़ निश्चय कर कर्मावती भागी जा रही है। चार दिन की भूखी-प्यासी वह सुकुमार बालिका भूख-प्यास को भूलकर अपने गन्तव्य स्थान की तरफ दौड़ रही है। कभी कहीं झरना मिल जाता तो पानी पी लेती। कोई जंगली फल मिलें तो खा लेती , कभी-कभी पेड़ के पत्ते ही चबाकर क्षुधा-निवृत्ति का एहसास कर लेती।

आखिर वह परम भक्ति बालिका वृन्दावन पहुँची। सोचा कि इसी वेश में रहूँगी तो मेरे इलाके के लोग पहचान लेंगे , समझायेंगे, साथ चलने का आग्रह करेंगे। नहीं मानूँगी जबरन पकड़कर ले जायेंगे। इससे अपने को छुपाना अति आवश्यक है। कर्मावती ने वेश बदल दिया। सादा फकीर-वेश धारण कर लिया। एक सादा श्वेत वस्त्र, गले में तुलसी की माला , ललाट पर तिलक। वृन्दावन में रहनेवाली और भक्तिनों जैसी भक्तिन बन गयी।

कर्मावती के कुटुम्बीजन वृन्दावन आये। सर्वत्र खोज की। कोई पता नहीं चला। बाँकेबिहारी के मंदिर में रहे, सुबह शाम छुपकर तलाश की लेकिन उन दिनों कर्मावती मंदिर में क्यों जाये? बुद्धिमान थी वह।

वृन्दावन में ब्रह्मकुण्ड के पास एक साधु रहते थे। जहाँ भूले- भटके लोग ही जाते वह ऐसी जगह थी, वहाँ कर्मावती पड़ी रही। वह अधिक समय ध्यानमग्न रहा करती , भूख लगती तब बाहर जाकर हाथ फैला देती। भगवान की प्यारी बेटी भिखारी के वेश में टुकड़ा खा लेती।

जयपुर से भाई आया , अन्य कुटुम्बीजन आये। वृन्दावन में सब जगह खोजबीन की। निराश होकर सब लौट गये। आखिर पिता राजपुरोहित परशुराम स्वयं आये। उन्हें हृदय में पूरा यकीन था कि मेरी कृष्णप्रिया बेटी श्रीकृष्ण के धाम के अलावा और कहीं न जा सकती। सुसंस्कारी, भगवदभक्ति में लीन अपनी सुकोमल , प्यारी बच्ची के लिए पिता का हृदय बहुत व्यथित था। बेटी की मंगल भावनाओं को कुछ- कुछ समझनेवाले परशुराम का जीवन निस्सार- सा हो गया था। उन्होंने कैसे भी करके कर्मावती को खोजने का दृढ़ संकल्प कर लिया। कभी किसी पेड़ पर तो कभी किसी पेड़ पर चढ़कर मार्ग के पासवाले लोगों की चुपके से निगरानी रखते , सुबह से शाम तक रास्ते गुजरते लोगों को ध्यानपूर्वक निहारते कि शायद , किसी वेश में छिपी हुई अपनी लाडली का मुख दिख जाय !

पेड़ों पर से एक साध्वी को, एक-एक भक्तिन को, भक्त का वेश धारण किये हुए एक- एक व्यक्ति को परशुराम बारीकी से निहारते। सुबह से शाम तक उनकी यही प्रवृत्ति रहती। कई दिनों के उनका तप भी फल गया। आखिर एक दिन कर्मावती पिता की जासूस दृष्टि में आ ही गयी। परशुराम झटपट पेड़ से नीचे उतरे और वात्सल्य भाव से, रूँधे हुए हृदय से 'बेटी.... बेटी...' कहते हुए कर्मावती का हाथ पकड़ लिया। पिता का स्नेहिल हृदय आँखों के मार्ग से बहने लगा। कर्मावती की स्थिति कुछ और ही थी। ईश्वरीय मार्ग में ईमानदारी से कदम बढ़ानेवाली वह साधिका तीव्र विवेक-वैराग्यवान हो चली थी, लौकिक मोह-ममता से सम्बन्धों से ऊपर उठ चुकी

थी। पिता की स्नेह-वात्सल्यरूपी सुवर्णमय जंजीर भी उसे बाँधने में समर्थ नहीं थी। पिता के हाथ से अपना हाथ छुड़ाते हुए बोलीः

'मैं तो आपकी बेटी नहीं हूँ। मैं तो ईश्वर की बेटी हूँ। आपके वहाँ तो केवल आयी थी कुछ समय के लिए। गुजरी थी आपके घर से। अगले जन्मों में भी मैं किसी की बेटी थी, उसके पहले भी किसी की बेटी थी। हर जन्म में बेटी कहने वाले बाप मिलते रहे हैं, माँ कहने वाले बेटे मिलते रहे हैं, पत्नी कहने वाले पति मिलते रहे हैं। आखिर में कोई अपना नहीं रहता है। जिसकी सत्ता से अपना कहा जाता है, जिससे यह शरीर टिकता है वह आत्मा- परमात्मा, वे श्रीकृष्ण ही अपने हैं। बाकी सब धोखा-ही-धोखा है - सब मायाजाल है।"

राजपुरोहित परशुराम शास्त्र के अभ्यासी थे, धर्मप्रेमी थे, संतों के सत्संग में जाया करते थे। उन्हें बेटी की बात में निहित सत्य को स्वीकार करना पड़ा। चाहे पिता हो, चाहे गुरु हो सत्य बात तो सत्य ही होती है। बाहर चाहे कोई इन्कार कर दे, किंतु भीतर तो सत्य असर करता ही है।

अपनी गुणवान संतान के प्रति मोहवाले पिता का हृदय माना नहीं। वे इतिहास, पुराण और शास्त्रों में से उदाहरण ले- लेकर कर्मावती को समझाने लगे। बेटी को समझाने के लिए राजपुरोहित ने अपना पूरा पांडित्य लगा दिया पर कर्मावती ....? पिता के विद्वतापूर्ण प्रश्न सुनते-सुनते यही सोच रही थी कि पिता का मोह कैसे दूर हो सके। उसकी आँखों में भगवदभाव के आँसू थे, ललाट पर तिलक, गले में तुलसी की माला। मुख पर भक्ति का ओज आ गया था। वह आँखे बन्द करके ध्यान किया करती थी। इससे आँखों में तेज और चुम्बकत्व आ गया था। पिता का मंगल हो, पिता का मेरे प्रति मोह न रहे। ऐसी भावना कर हृदय में दृढ़ संकल्प कर कर्मावती ने दो-चार बार पिता की तरफ निहारा। वह पण्डित तो नहीं थी लेकिन जहाँ से हजारों- हजारों पण्डितों को सत्ता-स्फूर्ति मिलती है, उस सर्वसत्ताधीश का ध्यान किया करती थी। आखिर पंडितजी की पंडिताई हार गयी और भक्त की भक्ति जीत गयी। परशुराम को कहना पड़ाः "बेटी ! तू सचमुच मेरी बेटी नहीं है, ईश्वर की बेटी है। अच्छा, तू खुशी से भजन कर। मैं तेरे लिए यहाँ कुटिया बनवा देता हूँ, तेरे लिए एक सुहावना आश्रम बनवा देता हूँ।"

"नहीं, नहीं...." कर्मावती सावधान होकर बोलीः "यहाँ आप कुटिया बनायें तो कल माँ आयेगी, परसों भाई आयेगा, तरसों चाचा-चाची आयेंगे, फिर मामा-मामी आयेंगे। फिर से वह संसार चालू हो जायेगा। मुझे यह माया नहीं बढ़ानी है।"

कैसा बच्ची का विवेक है ! कैसा तीव्र वैराग्य है ! कैसा दृढ़ संकल्प है ! कैसी साधना सावधानी है ! धन्य है कर्मावती !

परशुराम निराश होकर वापस लौट गये। फिर भी हृदय में संतोष था कि मेरा हक्क का अन्न था, पवित्र अन्न था, शुद्ध आजीविका थी तो मेरे बालक को भी नाहकर के विकार और

विलास के बदले हक्क स्वरूप ईश्वर की भक्ति मिली है। मुझे अपने पसीने की कमाई का बढ़िया फल मिला। मेरा कुल उज्जवल हुआ। वाह.....!

परशुराम अगर तथाकथित धार्मिक होते , धर्मभीरू होते तो भगवान को उलाहना देतेः 'भगवान ! मैंने तेरी भक्ति की, जीवन में सच्चाई से रहा और मेरी लड़की घर छोड़कर चली गयी? समाज में मेरी इज्जत लुट गयी...' ऐसा विचार कर सिर पीटते।

परशुराम धर्मभीरू नहीं थे। धर्मभीरू यानी धर्म से डरनेवाले लोग। ऐसे लोग कई प्रकार के वहमों में अपने को पीसते रहते हैं?

धर्म क्या है? ईश्वर को पाना ही धर्म है और संसार को 'मेरा' मानना संसार के भोगों में पड़ना अधर्म है। यह बात जो जानते हैं, वे धर्मवीर होते हैं।

परशुराम बाहर से थोड़े उदास और भीतर से पूरे संतुष्ट होकर घर लौटे। उन्होंने राजा शेखावत सरदार से बेटी कर्मावती की भक्ति और वैरा ग्य की बात कही। वह बड़ा प्रभावित हुआ। शिष्यभाव से वृन्दावन में आकर उसने कर्मावती के चरणों में प्रणाम किया , फिर हाथ जोड़कर आदरभाव से विनीत स्वर में बोलाः

"हे देवी ! हे जगदीश्वरी ! मुझे सेवा का मौका दो। मैं सरदार होकर नहीं आया , आपके पिता का स्वामी होकर नहीं आया, आपके पिता का स्वामी हो कर नहीं आया अपितु आपका तुच्छ सेवक बनकर आया हूँ। कृपया इन्कार मत करना। ब्रह्मकुण्ड पर आपके लिए छोटी- सी कुटिया बनवा देता हूँ। मेरी प्रार्थना को ठुकराना नहीं।"

कर्मावती ने सरदार को अनुमति दे दी। आज भी वृन्दावन में ब्रह्मकुण्ड के पा स की वह कुटिया मौजूद है।

पहले अमृत जैसा पर बाद में विष से बदत्तर हो, वह विकारों का सुख है। प्रारंभ में कठिन लगे, दुःखद लगे, बाद में अमृत से भी बढ़कर हो , वह भक्ति का सुख पाने के लिए बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, कई प्रकार की कसौटियाँ आती हैं। भक्त का जीवन इतना सादा, सीधा-सरल, आडम्बररहित होता है कि बाहर से देखने वाले संसारी लोगों को दया आती हैः 'बेचारा भगत है, दुःखी है।' जब भक्ति फलती है, तब वे ही सुखी दिखने वाले हजारों लोग उस भक्त-हृदय की कृपा पाकर अपना जीवन धन्य करते हैं। भगवान की भक्ति की बड़ी महिमा है !

जय हो प्रभु ! तेरी जय हो। तेरे प्यारे भक्तों की जय हो। हम भी तेरी पावन भक्ति में डूब जायें। परमेश्वर! ऐसे पवित्र दिन जल्दी आयें। नारायण....! नारायण.....!! नारायण....!!

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ